माता मॉण्टेसोरी के विचार और विधि

लेखक की अन्य पुस्तकें

१.	बालक का भाव विकास (सचित्र)	५-०-०
२.	भारतीय संस्कृति के आधार	२-८-०
३.	भारतीय सभ्याचार दी रूप रेखा (पंजाबी)	२-८-०
4.	Dialogues on Indian Culture (Second Impression).	2-4-0
5.	What is Wrong with the Moral Education of Children?	1-0-0
6.	Ethics of Dev Atma.	2-0-0

इस विषय पर अन्य पुस्तकें

१.	अपने बालक को पहचानिये	युधिष्ठर कुमार	१-८-०
२.	आपका मुन्ना (सचित्र) भाग १, पालन पोषण	सावित्री देवी वर्मा	३-८-०
३.	,, ,, (सचित्र) भाग २, समस्याएँ	,, ,,	५-०-०
४.	,, ,, (सचित्र) भाग ३, शिक्षण	,, ,,	५-०-०
५.	मन की बातें	गुलाबराय	३-०-०
६.	आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान	ईश्वरचन्द्र शर्मा	५-०-०

बालकों के लिए सुन्दर, सचित्र पुस्तकें

काश्मीर की लोक-कथाएँ भाग १, १) काश्मीर की लोक-कथाएँ भाग २, १।।) विन्ध्य-भूमि की लोक-कथाएँ १) व्रज की लोक-कथाएँ १।।) पंजाब की लोक-कथाएँ १) बंगाल की लोक-कथाएँ १।।) मालवा की लोक-कथाएँ १।।) आंध्र की लोक-कथाएँ १।।) राजस्थान की लोक-कथाएँ १) गढ़वाल की लोक-कथाएँ १।।) नेपाल की लोक-कथाएँ १।।) हरियाणा की लोक-कथाएँ १।।) मनोरंजक लोक कथाएँ भाग १, १।) मनोरँजक लोक-कथाएँ भाग २, १।) सौराष्ट्र की लोक-कथाएँ २।।) हिमाचल की लोक-कथाएं १।) उत्तर भारत की लोक-कथाएँ (तीन भाग) प्रत्येक भाग १।) निमाड़ी की लोक-कथाएँ भाग १, १।) निमाड़ी की लोक-कथाएँ भाग २, १।) हमारी लोक-कथाएँ १, १।।) हमारी लोक-कथाएँ २, १।।) छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएँ १।।) फ्राँस की लोक-कथाएँ १।।) रूस की लोक-कथाएँ १।) चीन की लोक-कथाएँ १।) अरब की लोक-कथाएँ १।) जर्मनी की लोक-कथाएँ १।)

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६

माता मॉण्टेसोरी

माता मॉण्टेसोरी के विचार और विधि

लेखक
प्रोफ़ैसर एस० पी० कनल
बी० ए० आनर्ज़ (लण्डन)
अध्यक्ष दर्शन विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी कालिज, नई दिल्ली
भूतपूर्व आचार्य, देव समाज ट्रेनिंग कालिज, फ़िरोज़पुर
तथा
प्रोफ़ैसर (मिसिज़) प्रेमलता एस० कनल
एम० ए० (कलकत्ता), बी० टी०
अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी कालिज, नई दिल्ली

१९५६
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६
मूल्य सात रुपये आठ आने

मेरी

पूज्य और आदरणीय माता जी

भाभी

(श्रीमती सरस्वती देवी जी कनल)

को समर्पित

दफ़तरे हस्ती में थी ज़रीं वर्क तेरी हयात ।

थी सरापा दीनों दुनियां का सबक तेरी हयात ।।

प्रस्तावना

हिन्दी में पुस्तक लिखने की एक सुविधा जो अंग्रेजी लेखक को प्राप्त नहीं, यह है कि उसे अपनी पुस्तक लिखने का औचित्य सिद्ध करने के लिए कारण अथवा बहाने नहीं ढूंढने पड़ते। हिन्दी साहित्य की स्थिति एक नव-स्थापित बैंक की भांति है जहां प्रत्येक नियोजक का स्वागत होता है चाहे वह कितना ही निम्न श्रेणी का क्यों न हो और चाहे उसका नियोजन कितना ही न्यून अथवा अल्प क्यों न हो। इस साहित्य बैंक, जिसका भविष्य निश्चय ही बहुत उज्ज्वल है, के एक विनम्र नियोजक की मन:स्थिति से यह पुस्तक लिखी तथा भेंट की जाती है।

आज हम यह अनुभव करते हैं कि शिक्षा केवल साक्षरता नहीं। शिक्षा का अर्थ शिक्षार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। शिक्षार्थी में पढ़ने और लिखने की योग्यता होनी चाहिए किन्तु यही पर्याप्त नहीं। उसमें स्वतन्त्रता पूर्वक मनन करने, सत्य और असत्य, उचित और अनुचित तथा सुन्दर और असुन्दर में भेद करने की क्षमता होनी चाहिए। उसे अपने जनतन्त्रात्मक राज्य का योग्य नागरिक बनना है जिसका तात्पर्य निष्कपटता, सत्यता, उत्तरदायित्व-भावना तथा बन्धुत्व आदि सामाजिक गुणों का विकास है। उसे एक अच्छा मनुष्य बनना है जो सात्विकता, सचाई, प्रेम और भ्रातृत्व के जीवन में चरम सन्तोष अनुभव करे, तथा अपने आप से, अपने समाज, अपने साथी तथा संसार से प्रसन्नता पूर्वक सामञ्जस्य स्थापित कर सके।

शिक्षा के इस सही अर्थ को मूर्त रूप देने में माता पिता का भाग अति महत्वपूर्ण है। माता पिता अपने बच्चे के न केवल प्रथम शिक्षक हैं अपितु उसके सम्पूर्ण वृद्धि-काल में उसके शिक्षक भी रहते हैं। अतः केवल अध्यापकों को ही प्रशिक्षित करना पर्याप्त नहीं। शिक्षा-क्षेत्र में हमारी वास्तविक समस्या प्रत्येक माता पिता को बाल-शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा उचित वृत्तियों का प्रशिक्षण देना है।

जब शिक्षा के लिये राष्ट्र समग्र प्रयत्न की आवश्यकता है तो हमारे राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकों को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है।

ये पुस्तकें राष्ट्र के समस्त साक्षर व्यक्तियों को इस योग्य बनाती हैं कि वे अपनी पीढ़ी को सत्य, अहिंसा तथा सेवा के आदर्शों के आधार पर निर्माण करने में योगदान कर सकें ।

इस पुस्तक में शिक्षा क्षेत्र की एक महान मार्गदर्शिका के शिक्षा सम्बन्धी विचारों तथा प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है । उनके विचारों, शिक्षा पद्धति तथा सब से बढ़ कर बालकों के प्रति उनकी आत्मीयता पूर्ण सेवा भावना से समूचे विश्व में बाल-शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा है । हमारा सौभाग्य है कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में, भारत भर के अध्यापकों का प्रेरणा एवं प्रशिक्षण तथा बच्चों के माता-पिताओं को अपनी प्रशस्त भावनाओं से अनुप्राणित करके, उन्होंने अपना सर्वोत्तम योग हमारे देश को दिया है । इसी लिये उन्हें माता मॉण्टेसोरी के नाम से स्मरण किया जाता है ।

यह पुस्तक माता-पिताओं तथा अध्यापकों दोनों को सम्बोधन करती है । इस के द्वारा पाठकों में माता मॉण्टेसोरी के बाल-शिक्षा सम्बन्धी विचारों तथा आदर्शों की भावना को उत्साहित करने का प्रयत्न किया गया है । माता मॉण्टेसोरी की शिक्षा की आत्मा माता पिता, संरक्षकों तथा अध्यापकों को आह्वान करती है कि बालकों के प्रति अपने अहं, केन्द्रित प्रेम, लोभ, हिंसा और अज्ञान का त्याग करके उनके प्रति स्नेह, धैर्य तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करें । आशा है समालोचक गण, लेखक के इस उद्देश्य पर दृष्टि रखते हुए पुस्तक का मूल्यांकन करेंगे ।

यह पुस्तक अध्यापकों के लिए भी लाभदायक हैं । इसमें मॉण्टेसोरी शिक्षा पद्धति के इतिहास, विचारधारा, सिद्धान्त तथा विधियों को सविस्तार प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है । एक ही पुस्तक में इन सभी पक्षों का निरूपण इसकी विशेषता है ।

किसी वैज्ञानिक रचना में भाषा-सौन्दर्य का स्थान गौण है । मुख्य गुण तो विषय-वस्तु को सुलझे हुए ढंग से स्पष्टता पूर्वक प्रस्तुत करने में है । किसी वैज्ञानिक कृति की समीक्षा करते समय भाषा सम्बन्धी इस दृष्टिकोण का ध्यान रखना आवश्यक है ।

यह रचना एक संयुक्त प्रयास का परिणाम है। जब यह पुस्तक लिखी गई तब हम दोनों देवसमाज ट्रेनिंग कालिज, फिरोज़पुर (पंजाब) में अध्यापक थे। श्रीमती प्रेमलता एस० कनल मिलिट्री ऑफ़िसरज़ चिल्ड्रन स्कूल, दिल्ली छावनी में स्वयं मॉण्टेसोरी वर्गों का सञ्चालन करती रही हैं। उनके बिना इस पुस्तक की रचना असम्भव थी।

मैं श्री के० बी० श्रीवास्तव बी० ए० मॉण्टेसोरी ट्रेण्ड जो माडर्न स्कूल, दिल्ली में श्री जूस्टन के साथ मॉण्टेसोरी वर्गों का संचालन करते रहे हैं तथा अब, अन्तर्राष्ट्रीय मॉण्टेसोरी संस्था से सम्बन्धित मॉण्टेसोरी स्कूल के निर्देशक हैं, का अत्यन्त आभारी हूँ। उन्होंने इस पुस्तक के कई अध्यायों को पढ़ा और बहुत से मूल्यवान सुझाव दिए। उन्हीं के सुझावों के फल-स्वरूप, पुस्तक के अन्तिम चार अध्याय पुनः लिखे गए हैं। इस पुनर्लेखन कार्य में मुझे श्रीमती करुणा राज एम० ए० मनोविज्ञान, मॉण्टेसोरी ट्रेण्ड तथा श्रीमती रक्षा सूद मॉण्टेसोरी ट्रेण्ड से बहुत सहायता मिली है। इन बहुत से मॉण्टेसोरी प्रशिक्षित बन्धुओं के सहयोग से पुस्तक की सामग्री को और भी अधिक अधिकृत स्वरुप मिल गया है।

पुस्तक की भाषा के पुनर्निरीक्षण के कार्य में मुझे श्री लक्ष्मी शर्मा बी० ए०, साहित्य रत्न प्रयाग तथा श्री एम० सी० गुप्ता एम० ए० हिन्दी से बहुत सहायता प्राप्त हुई है। दोनों ने बहुत से प्रूफ़ भी देखे हैं। प्रूफ़ के काम में मुझे अपने विद्यार्थी श्री ओम प्रकाश अरोड़ा बी० ए० से बहुत ही सहायता मिली है।

चित्रों के लिए मैं शिक्षा मन्त्रालय तथा सूचना तथा प्रसार मन्त्रालय का आभारी हूँ कि उन्होंने अपने कुछ ब्लाक तथा फोटो इस पुस्तक में उपयोग करने को उधार दिए (फोटो संख्या २ पृष्ठ २४)। मैं श्री के० बी० श्रीवास्तव का भी अति धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने मुख–पृष्ठ तथा डस्ट कवर के लिये माता मॉण्टेसोरी के चित्र उधार दिये और उन्हीं के परिचय से श्रीमती पुष्पा ढांडा बी० ए० मॉण्टेसोरी ट्रेण्ड अध्यक्ष मॉण्टेसोरी बाल घर के एपरेटस की फोटो लेने में अति मूल्यवान सहयोग प्राप्त हुआ। मॉण्टेसोरी स्कूल, फ़ीरोज़शाह रोड, की निर्देशिका श्रीमती सुशील ने अपने स्कूल की फोटो आदि उतारने में हमें उत्साहप्रद सहयोग दिया तथा कुछ चित्र आदि भी उधार दिये।

श्री जी० डी० खन्ना मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने केवल स्नेह के नाते एपरेटस आदि का फोटो उतारने का कष्ट किया। उन्होंने मुझे बहुत सहायता प्रदान की है।

अन्त में मैं श्री के० एल० वोहरा एम० ए० का धन्यवाद करता हूँ जिन्हों ने पुस्तक से सम्बद्ध सभी कार्यों में मुझे सतत सहयोग दिया ।

पंजाब यूनिवर्सिटी कैम्प कालेज,
न्यू देहली ।
१ जून, १९५६

एस० पी० कनल

विषय-सूची

आधुनिक सभ्यता के चार महापाप

१. आत्म केन्द्रित प्रेम १
२. माया मोह ८
३. हिंसा १४
४. अज्ञानता और अशिक्षता १८

बालक के विषय में चार मुख्य तत्व

५. बालक अपने जीवन का स्वयं ही निर्माण करता है २६
६. बालक के संवेदन काल ३३
७. प्रौढ़ और बालक की क्रियाओं में मूल अन्तर ४२
बालक के विकास और पतन की सामग्री वातावरण में ही है ५१

घर में शिक्षा

९. पालन-पोषण का उद्देश्य ५७
१०. बालक का पहला स्कूल—घर ६१
११. शिशु के लिए घर का वातावरण ६५
१२. बालक की क्रियाओं के लिए घर में साधन ७१

स्कूल में शिक्षा

१३. मॉण्टेसोरी विधि का इतिहास ७७
१४. अध्यापक का मानसिक उपकरण ८२
१५. स्कूल का भवन ८६
१६. खाद्य पदार्थ और व्यायाम ९२
१७. सृष्टि विषयक शिक्षा ९८
१८. दैनिक जीवन के साधनों की शिक्षा १०३

पृष्ठ

१९. इन्द्रिय शिक्षा ११९

२०. भाषा शिक्षा १३६

२१. गणित शिक्षा १४४

चित्र-सूची

		पृष्ठ
१.	माता मॉण्टेसोरी	१
२.	बालकों के खेलने का एक दृश्य	२४
३.	हाथ धोने का साधन	३२
४.	बूट पालिश का साधन	३२
५.	दैनिक क्रियाओं का एक साधन (कपड़े धोना)	५७
६.	मैदान की खेल सामग्री	६२
७.	क्ले मौडलिंग	१०१
८.	बटन खोलने-बन्द करने का साधन	१०४
९.	बटन फ्रेम, लेस फ्रेम, बक्कल फ्रेम और बो फ्रेम	१०४
१०.	मॉण्टेसोरी सामग्री का प्रयोग	११२

दृश्येन्द्रिय विकास की सामग्री और साधन

११.	गट्टा पेटी	११३
१२.	चौड़ी सीढ़ी	११३
१३.	लम्बी सीढ़ी	११३
१४.	मीनार	११६
१५.	दृश्येन्द्रिय के साधन का एक चित्र	११६

रंगों के भेद बोध के साधन

१६.	तीन मुख्य रंगों की चपटी रीलें	१२०
१७.	नौ रंगों और सफेद और काले रंग की रीलें	१२१
१८.	नौ रंगों के हल्के और गाढ़े भेद की रीलें	१२१

स्पर्श इन्द्रिय विकास की सामग्री

१९.	दो भाग वाला बोर्ड	१२२
२०.	खुर्दरे और कोमल कागज़ वाला बोर्ड	१२२
२१.	कपड़ों की सामग्री	१२२

आकार भेद बोध के साधन पृष्ठ

२२. प्रदर्शनीय चौखट १२३
२३. छः दराजों वाली सन्दूकची १२४
२४. मैटल इनसैटस १२४
२५. कार्डों के सैट १२६
२६. आकार भेद विकास के साधन के दृश्य १२६
२७. भार इन्द्रिय की सामग्री १२८
२८ कर्ण इन्द्रिय की सामग्री १२८
२९. भाषा शिक्षा के साधनों का एक दृश्य १३६
३०. गणित शिक्षा के साधन का एक दृश्य १३६
३१. संख्या वाली लम्बी सीढ़ी १४४
३२. सिलाइयों के डिब्बे १४४
३३. कोड़ियों की सामग्री १४४

— —

माता मॉण्टेसोरी के विचार और विधि

१

आत्म-केन्द्रित प्रेम

माता मॉण्टेसोरी के नाम से कौन परिचित न होगा ? आपने उनके चित्र समाचार पत्रिकाओं और फिल्मों में देखे होंगे। और उनकी शिक्षण विधि की खेल सामग्री भी पाठशालाओं या प्रदर्शनियों में देखी होगी। परन्तु वह समाज में जो क्रान्ति ला रही हैं इसकी महत्ता को कम लोगों ने ही अनुभव किया होगा। बच्चों के सम्बन्ध में माता मॉण्टेसोरी का वही क्रान्तिकारी मुक्तिदाता का स्थान है जो इब्राहिम लिंकन का गुलामों के सम्बन्ध में, जो कार्ल मार्क्स का मजदूरों के सम्बन्ध में, और जो रूसो का साधारण व्यक्ति के सम्बन्ध में है। इन विश्व नेताओं ने मनुष्य की कठोरताओं का निर्विवादरूप से खण्डन किया है और अनवद्य चेष्टाओं से मनुष्य से अपने पापों और दोषों को स्वीकार कराया है। मनुष्य समाज इतना तो अब मानने की हालत में है कि हमने गुलामों पर पशुओं की तरह बेचने और ख़रीदने का कठोर पाप किया है। हमने मज़दूरों के उनके अपने पसीने से कमाई हुई रोटी को उनके मुंह से छीन लिया है। हमने स्त्री जाति को जो समाज की जननी है सामाजिक अधिकारों से वंचित रक्खा है। परन्तु हम में से कितने माता पिता हैं जो अपना यह पाप स्वीकार करने को तैयार हैं कि "हम अपने बालकों पर अगणित और कठोर अत्याचार करते हैं।" हमारा तो दावा यह होगा कि हम में से प्रत्येक अपने बालकों को स्वयं से अधिक प्यार करता है और अपना पेट काट कर उन्हें पालता-पोसता है। भला हम अपने बच्चों पर कैसे अत्याचार कर सकते हैं? माता मॉण्टेसोरी आपके दावों के बावजूद भी आपके व्यवहार को बालक के सम्बन्ध में अन्यायमूलक बतायेंगी। उनका कथन है कि जिस मानव-प्रकृति से मनुष्य ने गुलामों, मज़दूरों, साधारण व्यक्तियों तथा स्त्रियों के

अधिकार पांव तले रोंदे हैं, उसी प्रकृति ने मनुष्य को अपने बालकों के जीवन का दीपक बुझाने के लिए भी उत्सुक किया है। माता पिता का अपने बालकों के सम्बन्ध में हितकारी होने का दावा करना कोई नई बात नहीं। यह अनुभवहीन कठोर व्यक्तियों का सदा ही दावा रहा है। किस निरंकुश राजा ने अपने आपको प्रजा का हितकारी नहीं बताया? किस निरंकुश पूंजीवादी ने अपने आपको मजदूरों का सेवाकारी नहीं बताया? किस निरंकुश पुरुष ने अपने आप को स्त्री का रक्षक नहीं कहा? अनुभव-हीन निरंकुश का तो सिद्धान्त ही यह है कि मैं ही उत्पीड़ित व्यक्तियों का रक्षक हूँ और उत्पीड़ित व्यक्ति का चीख़ना-चिल्लाना तथा शिकायत करना केवल उसकी कृतघ्नता है। अत्याचारी का यह विश्वास उसे अपना दोष देखने के अयोग्य बना देता है। और इसीलिए मनुष्य ने उनके कठोर प्रयोगों के खण्डन-कर्त्ताओं का घोर विरोध किया है।

मनुष्य की वह प्रकृति जो उसे अत्याचारी होने पर भी हितकारी होने का ढोंग देती है उसे माता मॉण्टेसोरी आत्म-केन्द्रित प्रेम कहती हैं। *वह व्यक्ति आत्म-केन्द्रित प्रेमी है जो दूसरे के जीवन की तुलना के लिये अपने भाव और विचारों को कसौटी बनाता है।*

बालक की क्रियाओं के प्रति आत्म-केन्द्रित वृत्ति—

माता-पिता का ही दृष्टान्त लीजिये। माता-पिता कई प्रकार की गतियां करते हैं। इनकी गतियों का उद्देश्य बाह्य आदर्श अर्थात् धन, सम्पत्ति, घरेलू काम काज, पद, नाम, यश, इत्यादि की उपलब्धि है। इन बाह्य आदर्श की गतियों को माता-पिता तथा प्रौढ़ समाज ने "काम" का सुशोभित नाम दिया है और ऐसी गति को ही मूल्यवान बताया है। आत्म-केन्द्रित माता-पिता तथा प्रौढ़ समाज ने ऐसी बाह्य आदर्श की गतियों को सब प्रकार की गतियों का निर्णय करने की कसौटी बनाया है। क्योंकि बालक की गतियों का कोई बाह्य उद्देश्य नहीं, इसीलिए उसकी गतियों को 'खेल' का नाम देकर उसे ठुकराया है। माता के सामने उसके पति की पैसे उपार्जन की क्रियाएं तो काम हैं परन्तु बालक का सारा दिन एक ही शब्द उच्चारण करना सिर खाना है। उसकी क्रिया का तो कोई महत्व ही नहीं क्योंकि वह कोई बाह्य उद्देश्य पूरा नहीं कर रहा है।

यथार्थ में बालक की क्रियाएं आन्तरिक विकास की क्रियाएं हैं। बालक की क्रियाएं तो अपनी आत्मा को बलवान करने की क्रियाएं हैं, विकास की क्रियाएं हैं, नई मनुष्य जाति की रचना की क्रियाएं हैं। यदि बालक अपने विकास की क्रियाओं का संग्राम छोड़ दे तो मनुष्य जाति का इतिहास ही नष्ट हो जावे। परन्तु माता-पिता तथा प्रौढ़ समाज आत्म-केन्द्रित प्रेम की अन्धता के कारण बालक की क्रियाओं को खेल बता कर और अपने कार्य में हस्तक्षेप समझ कर दमन करने का प्रयत्न करते हैं। बालक स्वयं दूध पीना चाहता है, बालक स्वयं कपड़े पहिनना चाहता है, बालक स्वयं बाल बनाना चाहता है, बालक स्वयं किवाड़ बंद करना और खोलना चाहता है, बालका स्वयं लिखना तथा लकीरें खेंचना चाहता है, बालक चीजों को छूकर, उन्हें उठा कर, उन्हें मुंह में डाल कर, अपने वातावरण से संपर्क कर उसको समझना चाहता है—भला कितने माता-पिता बालक की इन क्रियाओं का सम्मान करते हैं ? सम्मान तो कहीं दूर रहा, उसे खेल बता कर उसका कठोर निरादर करते हैं और यदि इन गतियों से उनके कहलाने वाले काम में हस्तक्षेप हो तो वे उसे ज़बरदस्ती बन्द कराते हैं। बालक दूध पीना चाहता है माता को उसकी इस गति की कोई कदर नहीं, केवल यह ही नहीं बल्कि वह समझती है कि उसके काम में तो देरी हो रही है, बालक दूध पीने में अधिक समय लगा रहा है। बालक व माता के उद्देश्यों में विरोध है। बालक की क्रियाओं का उद्देश्य आन्तरिक है अर्थात् अपनी आंखों और हाथों की क्रियाओं को मेल की हालत में लाना है। उसके हाथ और आंखों की गतियां मेल की हालत में नहीं, इसी कारण दूध का चम्मच मुंह की बजाय कभी २ नाक पर और कभी ठोड़ी पर जा लगता है। बालक अपनी गीत की इस अशुद्धि पर विजय पाने की चेष्टा करता है। माता बालक के इस श्रेष्ठ कार्य को खेल समझ कर उसे थप्पड़ लगाकर उसे स्वयं दूध पिला देती है, क्योंकि उसका घर का काम तो बहुत मूल्यवान है न ! निर्बल बालक निरंकुश माता का कहाँ कत मुक़ाबिला कर सकता है ? उत्पीड़ित होकर चुप हो जाता है। हम बालक को स्वयं गतियों से रोकते हैं परन्तु यदि हम को हमारी सब रोचक कृतियों से वंचित किया जावे तो हम ऐसे क़ैदी जीवन से मृत्यु को अधिक पसन्द करेंगे। बालक तो हमारे अत्याचारों का क़ैदी है। यदि बालक कहीं

आँख बचा कर अपनी क्रियाओं अर्थात् लोटे से बाल्टी में पानी भरना, एक बाल्टी से दूसरी बाल्टी में पानी भरना, या मिट्टी के खिलौने बनाना इत्यादि क्रियाएं करके आया हो तो उसे इस जीवन-संग्राम के लिए शाबाशी के स्थान पर डाँट और थप्पड़ों का पुरस्कार मिलता है। बालक के जीवन-विकास की कैसी कठोर परिस्थितियां हैं ? इससे बढ़ कर किसी के लिये और क्या कठोर जीवन हो सकता है कि उसकी गतियों का निरादर हो, उसकी रचना तथा जीवन विकास के लिये उसे झाड़ा, धमकाया तथा अपमानित किया जावे ? बड़े से बड़े महापुरुष को भी इतने दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं। क्योंकि महापुरुष के तो अनुयायी होते हैं जो उसके साथ उसके दुःखों के लिये सहानुभूति रखते हैं और उसके दुःखों को बटाते हैं। बालक बिचारे को तो अकेले ही प्रौढ़ समाज और सभ्यता के दुःख और पीड़ा सहनी पड़ती है उसकी दुःखी जीवन-यात्रा के लिये कहीं सहानुभूति नहीं, कहीं हाथ बटाई नहीं ? बालक पर अत्याचारों की कहानी और भी अधिक हृदयविदारक हो जाती है जब हम यह अनुभव करें कि बालक की अनुभव शक्ति अत्यन्त तीव्र होती है और उसकी सहन शक्ति अत्यन्त कम होती है। माता मॉण्टेसोरी ने बालक को 'दुःख-भोगी मसीहा' का स्वरूप बताया है जो प्रौढ़ समाज विशेष कर माता-पिता के अन्यायों की गठरी सिर पर उठाये अपनी जीवन-यात्रा करता रहता है।

बालक के मन के सम्बन्ध में आत्म-केन्द्रित वृत्ति—

केवल यही नहीं कि माता पिता अपने आत्म-केन्द्रित प्रेम के कारण बालक को क्रियाएं करने से रोकते हैं परन्तु बालक के मन को ग़लत सुझाव दे कर उसके व्यक्तित्व को नष्ट करते हैं और निजी निर्णय करने के लिये कुछ नहीं छोड़ते। इसमें सन्देह नहीं कि हम बालक को अपनी आत्मा के आदर्श के अनुसार विकसित होने नहीं देते, और उस पर अपने जीवन के आदर्श थोपते रहते हैं। इस लिये बालक को अपने जीवन से निर्वासित कर देते हैं। हम बालकों के लिये स्वयं व्यवसाय निश्चित करते हैं और यदि बालक हमारे निश्चित किये आदर्श के अनुसार न चले तो उससे हम दुःखी रहते हैं। अपने प्रेम से उसे वंचित करते हैं और यहां तक कि बुरा-भला तक कहते रहते हैं। इस प्रकार माता-पिता बालक के शरीर और मन दोनों को ही क़ैदी बना कर उसके

जीवन को कुरूप बना देते हैं। भला इससे अधिक कहीं अत्याचार हो सकता है?

घर के उपकरण में आत्म-केन्द्रित वृत्ति—

इस आत्म-केन्द्रित प्रेम की और लीला देखिये ! घर की वस्तुएं माता-पिता तथा प्रौढ़ व्यक्तियों की सुविधा के लिये ही है। माता-पिता के लिये तो बड़ी २ मेज़ कुर्सियां हैं जिस पर वह बड़े आराम से बैठ कर काम कर सकते हैं। परन्तु निस्सहाय बालक के लिये ऐसी छोटी मेज़ कुर्सी कहां जिसे वह उठा सके और उन पर बैठने का सुख अनुभव कर सके। इसी प्रकार घर में अल्मारियां तो अवश्य हैं पर वे ऐसी ऊंचाई पर बनाई गई हैं कि जिनमें माता पिता तो अच्छी तरह वस्तुएं धर-निकाल सकें, परन्तु बिचारे बालक की सुविधा की अल्मारी कहां है कि जिसमें वह अपनी इच्छा से आवश्यक सामग्री रख और उठा सके। हां, सभी अल्मारियां इतनी ऊँची बनाई जाती हैं कि बालक का हाथ तक न पहुँच सके। पुनः घर में खूंटियां तो अवश्य हैं परन्तु वह तो माता–पिता की सुविधा के अनुसार ऊंची लगी हुई हैं। बालक के लिये कोई खूंटी नहीं जिस पर वह जाकर अपने आप वस्त्र टांग सके। घर में बाल्टियां, फ़ुवारे इत्यादि तो जरूर हैं परन्तु वह इतने बड़े २ हैं कि बालक खाली भी न उठा सके। यदि हमें एक दिन के लिये भी ऐसे प्रतिकूल वाता-वरण में रहना पड़े जिसमें कि बालक को रहना पड़ता है तो हमें बालक के दुःख का अनुभव हो सकता है। कल्पना कीजिये कि आप को देवों के नगर में रहना पड़ रहा है। ऐसे देव जो आपसे कद में तिगुने हैं अर्थात् १५ या १६ फ़ुट लम्बे हैं उनकी कुर्सियों की बैठक आपके सिर तक पहुंचती है, उनकी बाल्टियां पांच २ फ़ुट ऊंची हैं जिनका ऊपर का दायरा ही चार फ़ुट का है—उनकी अल्मारियां दस–बारह फ़ुट ऊंची हैं, उनकी खूंटियां १२ फ़ुट ऊंची हैं इसी प्रकार उनके खाने के बर्तन, प्लेट, गिलास इत्यादि इतने बड़े २ हैं कि उठाने से गिरने का डर है, चम्मच इतने बड़े कि आपके मुंह में नहीं आते। और आपको वह अपनी चीजों को हाथ नहीं लगाने देते कि कहीं टूट न जावें। जब आप उनके साथ पैदल चलते हैं तो उनके क़दम इतने इतने दूर पड़ते हैं कि आप को उनके साथ दौड़ना पड़ता है और यदि आप नहीं दौड़ सकते तो आपको थप्पड़ लगाये जाते हैं । जब हम ऐसी कल्पना करते हैं

तब बालकों पर हमारे अन्यायों की कलई खुल जाती है और हमारे प्रेम का ढोंग हमारे सामने आ जाता है।

संक्षेपतः घर की हर वस्तु बालक को कहती है कि तू किस दुनिया में आ गया ? तेरे लिये यहां कोई स्थान नहीं। तेरी सुविधा के लिये यहां कोई चीज नहीं। हमारा भारीपन, हमारी लम्बाई–चौड़ाई तुझे लज्जित करने के लिये हैं और तुझे याद कराने के लिये है कि माता–पिता तथा प्रौढ़ समाज को तेरे अधिकारों की रक्षा का कोई विचार नहीं। बालक के लिये घर में कौन सा कोना ऐसा है जिसे वह अपना कह सके, जिस पर वह पूरा अधिकार जमा सके। उसकी वस्तुएं कहीं भी फेंकी जा सकतीं हैं और गन्दी कह कर घर से भी निकाली जा सकती हैं। माता–पिता का तो घर है न ? परन्तु बालक को तो घर पुकार २ कर कह रहा कि यह घर तुम्हारा नहीं क्योंकि किसी चीज पर, घर के किसी भी कोने पर तुम्हारा रत्ती भर अधिकार नहीं। इसी लिए माता मॉण्टेसोरी ने बालक को लावारिस व्यक्ति कहा है जिसे रखने को स्थान नहीं, जो घर में रह कर बेघर है, जो घर का कहला कर भी परदेशी है !

आत्म-केन्द्रित वृत्ति के कारण बालक पर **अस्वाभाविक क्रियाओं** *का थोपना—*

आपने सुना होगा कि किस प्रकार ग़रीब मज़दूरों की औरतें बालकों को अफीम देकर सुलाया करती हैं। इसलिये नहीं कि बालक के लिये सोना अच्छा है परन्तु इस लिए कि माता को कुछ और काम करना है। भला आत्म–केन्द्रित प्रौढ़ समाज में बालकों की आवश्यकताओं का कहां तक ख़्याल रखा जा सकता है ? बालक के जीवन की मांग तो जागना है परन्तु प्रौढ़ समाज की मांग इसके विरुद्ध है। इसलिए उसे विकास के नियमानुसार मुंह की खानी पड़ती है। बलवान जाति के ही अधिकार होते हैं, दुर्बल के अधिकार सदा पांव तले ही रोंदे जाते हैं। प्रौढ़–मनुष्य जाति जो बाल-जाति की तुलना में असीमित रूप से बलवान है वह बालक की मांगों को अपने समाज में कहां स्थान दे सकती है। इसीलिए बालक का सोना, जागना, माता-पिता की सुविधाओं के अनुसार ही हो सकता है। कौन नहीं जानता कि माता को जब काम करना होता है तो बालक को ज़बरदस्ती सुला देती है और यदि बालक इस समय न सोये तो क्रोधित होती है और उसे झूठे भय दिखाती

है कि हऊआ काट खाएगा, बन्दर उठा लेजावेगा, बिल्ली आजावेगी, इत्यादि। बालक को इतनी नींद की आवश्यकता नहीं, उसका जीवन तो क्रियाओं के लिए उत्सुक रहता है। उस पर नींद लादना वैसे ही है जैसे बहते हुए नदियों के प्रवाह को रोकने के लिए बाँध लगाना। जब बालक की क्रियाओं पर बाँध, लगाए जावें और बालक शरारती बन जाय तो उस में किसका दोष है— बालक का या उस पर रोक लगाने वालों का, नदियों के पानी का या बाँध लगाने वाले का ?

इसी प्रकार बालक चलना चाहता है, परन्तु वह तो अपनी चाल के अनुसार ही चल सकता है। वह प्रौढ़ों की गति के अनुसार तो नहीं चल सकता, उसका जीवन उसे चलने पर उत्सुक करता है। यह उसके विकास का आवश्यक साधन है, परन्तु हमारे लिए बालक की गति आराम-दह नहीं। इसलिए जब हमें बाहर जाना होता है तो हम यह ध्यान नहीं करते कि हम समय से इतने पहिले घर से निकलें कि बालक की चाल के अनुसार समय पर पहुंच जावें। इसके विपरीत हम यह करते हैं कि बालक को या तो बच्चों की गाड़ी में डाल कर एक बोझे की तरह ले जाते हैं और या उसे गोद में उठा लेते हैं। परन्तु यदि बालक इन दोनों तरह की अपमानित सहायता को स्वीकार न करे और चलने पर उद्यत हो तो हम उसकी चलने की गति पर असन्तुष्ट हो दो चार थप्पड़ टिका देते हैं और यह कह कर कि वैसे तो कहता है कि मैं चलूंगा और चला जाता नहीं, उसे गोदी या गाड़ी में जकड़ देते हैं।

सारांश

(१) आत्म-केन्दित प्रेम के कारण प्रौढ़ समाज बालक की स्वभाविक क्रियाओं के महत्व को नहीं समझता उन्हें खेल कह कर उनका निरादर करता है और उनमें हस्तःक्षेप करता है।

(२) प्रौढ़, संकेतों द्वारा, अपने आदर्श बालक के मन पर थोपते हैं और इस प्रकार उसके मन के स्वभाव के अनुसार प्रवृत्तियों के विकास में हस्तःक्षेप करते हैं।

(३) घर की बनावट और उसके उपकरण में बालक की मांगों का कोई ख्याल नहीं करते।

(४) एक ओर प्रौढ़ समाज बालक को स्वभावक क्रियाओं से रोकता है दूसरी ओर उस पर अस्वभावक क्रियाएं थोपता है।

२

माया-मोह

माता मॉण्टेसोरी के अनुसार आज के प्रौढ़ समाज और विशेष कर माता पिता का दूसरा दोष उनका माया मोह है।

जब बालक वस्तुओं को छूता या उठाता है तो हम उसे क्यों रोकते हैं? आख़िर चीज़े छूने और उठाने के लिये ही तो हैं। ये चीज़ें हमारी आवश्यकताओं की तृप्ति के साधन हैं। हम इन्हें इसी लिये उठाते हैं क्यों कि हमें उन से अपनी कोई आवश्यक्ता पूरी करनी है। बालक भी उन्हें अपनी किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिये उठाता है, परन्तु उसकी माँग हमारी माँगों से भिन्न है, वह उठाना *सीखना* चाहता है, हम उठाना जानते हैं। वह अपने इस आन्तरिक उद्देश्य के अनुसार चीजें हिलाता हुआ, उठाता और रखता है तो हम उसको समझ नहीं सकते। हम यह समझते हैं कि वह इन चीज़ों से छेड़खानी कर रहा है, क्यों कि वह इन चीज़ों से हमारे उद्देश्य पूरे नहीं कर रहा है। हमारा आत्म–केन्द्रित प्रेम हमें बालक के उद्देश्यों से अन्धा बना देता है और इस प्रकार वह हमारे माया मोह की पुष्टि करता है! हम बालक को चीजें छूने या उठाने इसलिए नहीं देते कि वह उन्हें तोड़ फोड़ या गिरा न दे। यही कारण है कि हम उसे हर समय चीज़ों को छूने या उठाने से रोकते हैं।

मॉण्टेसोरी के पास एक सभ्य माता गई, जिसने मॉण्टेसोरी शिक्षा ली हुई थी। उसने स्वीकार किया कि एक दिन उसका बालक सोने के कमरे से गोल कमरे में बिना किसी कारण जग ला रहा था, बालक अपनी पूरी कोशिश से उस जग को उठा कर ले जा रहा था और उसकी कोशिश यही थी कि वह जग उसके हाथ से गिर न जाय। जब इस माता ने यह देखा तो उसने झट उससे जग लेकर जहां वह चाहता था रख दिया। परन्तु बालक ने इसे अपना अपमान समझा और रोने लगा। इस माता को अपने कार्य पर दुःख हुआ। परन्तु उसने अपनी इस अपमानित करने वाली और हानिकारक सहायता के लिए यह कारण बताया कि मैं यह सहन नहीं कर सकती थी कि मेरा बालक थक जावे। माता मॉण्टेसोरी

ने इस घटना पर विचार किया और उन्हें यह अनुभव हुआ कि माँ की यह सहायता बालक से सहानुभूति के कारण न थी, उसके माया-मोह के कारण थी। उसके इस मोह ने उसे बालक से जग लेने पर बाध्य किया। वह डरती थी कि कहीं बालक उस जग को गिरा कर कमरे के ग़लीचे को खराब न कर दे। इसपर उन्होंने इस माता को यह सलाह दी कि वह कोई दुर्लभ और क़ीमती चीनी की मिट्टी का बर्तन जैसे प्याला आदि, बालक को उठाने के लिए दे। माता ने वैसा ही किया और माता मॉण्टेसोरी को आकर बताया कि "जब बालक प्याला उठा कर ले जा रहा था तो मेरे दो भावों में अत्यन्त विरोध था—एक तरफ़ मुझे यह चिन्ता सता रही थी कि कहीं मेरा यह दुर्लभ प्याला बालक गिरा न दे और दूसरी ओर मुझे इसमें खुशी हो रही थी कि बालक चीजें उठाने की योग्यता की शिक्षा प्राप्त कर रहा है।" इस गति में दूसरा भाव तो मॉण्टेसोरी शिक्षा के कारण उत्पन्न हो गया था।

हम माता-पिताओं को ऐसी शिक्षा नहीं मिलती और इसलिए हमें बालक की क्रियाओं की सच्ची और अमूल्य क़ीमत का कोई अनुभव व ज्ञान नहीं होता। हममें तो पहला भाव अर्थात् लोभ ही उपस्थित होता है। बालक की क्रियाओं के प्रति सत्य ज्ञान के अभाव के कारण हम इस लोभ के अवगुण को आत्मिक गुण के वस्त्र पहना देते हैं। हम समझते हैं कि हम बालक को वस्तुएं छूने और उठाने, खोजने और तोड़ने, की क्रिया से इस कारण रोकते हैं कि बालक की विनाशकारी शक्ति न बढ़ सके, अर्थात् हम यह अपना आत्मिक कर्तव्य समझते हैं कि बालक की इस विनाश-कारी शक्ति का नाश किया जावे और उसे चुप करके बैठने और दूसरों की वस्तुएं न छूने का पाठ पढ़ाया जाय, इसलिए बालक को हर समय रोकना, टोकना, धमकाना, डाँटना और दण्ड तक देना अपने कर्तव्यों का आवश्यक भाग समझते हैं। हम इस बात को अपने अन्तःकरण की ध्वनि समझते हैं। परन्तु यदि अपनी सच्ची आत्म परीक्षा करें तो हमें उपरोक्त स्त्री की न्याईं ज्ञात होगा कि यह ध्वनि अन्तःकरण की ध्वनि नहीं केवल माया-मोह की ध्वनि है। यदि यह अन्तःकरण की ध्वनि होती तो हमें बालक के सम्बन्ध में सच्ची दृष्टि प्रदान करती। हमारा लोभ विकृत है जिससे हमें वस्तुओं का मूल्य ही दीखता है और जो उनकी रक्षा के लिए हमें बालक पर अत्याचार करने पर मजबूर करता है। माया लोभ का यही महादोष है कि हम उसके आधीन हो

जाते हैं। किसने नहीं सुना कि कई लालची लोभी व्यक्ति लाखों रुपये के मालिक होकर भी गलियों के भिखारियों से भी कहीं अधिक घिनौना जीवन व्यतीत करते हैं। अपने जिन बच्चों के लिए वे अपना सारा पैसा छोड़ जाना चाहते हैं, अपने जीते जी उन्हीं के जीवन को दु:खी कर देते हैं। ऐसे लोभी मनुष्य सादा जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अपने बालकों को प्यार नहीं करते अपितु उनका लोभ उन्हें अपने और अपने प्रेमी सम्बन्धियों और जीवन के अन्य सूत्रों अर्थात् बेटे बेटियों की सच्ची माँगों के प्रति भी अन्धा कर देता है। माया-मोह जीवन के साधन के स्थान पर मृत्यु का जाल बन जाता है जिस में फंस कर वह स्वयं और उसके सम्बन्धी दु:खी और विकृत जीवन व्यतीत करते हैं।

ऐसे अति लोभियों का असाधारण व्यवहार; इस सचाई की घोषणा करता है कि माया-मोह हमारे और हमारे साथियों के जीवन का शत्रु है। दुर्भाग्य से इसका खेल केवल प्रौढ़ जीवन तक सीमित नहीं है अपितु बाल जीवन में भी हस्तक्षेप करता है। हम बालक के जन्म लेते ही अपने मोह के कारण उसकी मांगों के प्रति अन्धे हो जाते हैं। उसके जन्म लेते ही हम अपनी चीज़ों को बचाने का यत्न करते हैं। उदाहरणार्थ रद्दी गन्दी चटाई को बचाने के लिए हम उस चटाई पर मोमजामा बिछा देते हैं और बालक के इस पर लेटने के दु:ख की कोई परवाह नहीं करते। हमारा लोभ उस गन्दी चटाई की क़ीमत देखता है, और हमारी बाल जीवन की आवश्यकताओं की अज्ञानता इस पाप प्रकृति की पुष्टि करती है। हम यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि यह ठण्डा मोमजामा बालक को कितना अरुचिकर होता होगा। ज्यों-ज्यों हमारा बाल विषयक ज्ञान बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों यह बोध हो रहा है कि यह मोमजामा बालक के लिए उचित नहीं। आज कल ऐसी चटाइयां बनाई जा रहीं हैं जो बालक के मल-मूत्र को ज़ज्ब करलें और जिसे फिर फैंका जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि इस विधि में खर्च तो अधिक है और इसलिए हमारे लोभ मोह पर ठेस भी है, परन्तु जैसे हम आज मज़दूरों और स्त्रियों को अधिकार दे रहे हैं हमें बालक के अधिकारों को भी स्वीकार करना है। हम सामाजिक संस्कारों के लिए इतना खर्च करते हैं। पुत्र-जन्म, मुण्डन, विवाह आदि सामाजिक अनुष्ठानों पर खर्च करके प्रसन्न होते हैं। बच्चों

के लिए धन छोड़ जाना अपना धर्म समझते हैं। इसलिए हम माता पिता बालकों के लिए धन छोड़ जाने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। क्योंकि बालक के उचित विकास का कोई सच्चा ज्ञान नहीं, और उसकी अपनी स्वयं क्रियाओं के लिए खर्च करने की कोई सामाजिक मांग नहीं, इसलिए उसकी क्रियाओं के लिए व्यय करना निरर्थक समझते हैं। जो पिता बालक के लिए हज़ारों रुपऐ छोड़ने के लिए रात दिन काम करता है, बालक के एक गिलास तोड़ने पर आग बबूला हो जाता है और बुरा भला कहता है। बालक के लिए ही सब कुछ है, परन्तु उसे किसी भी वस्तु के छूने या तोड़ने का अधिकार नहीं। अगर कोई अतिथि गिलास या प्याला तोड़ दे तो बालक देखता है कि उसके माता पिता उससे कहते हैं कि कोई बात नहीं, गिलास या प्याला मामूली था कोई क़ीमती चीज़ न थी। परन्तु यदि बालक से गिलास या प्याला टूट जाय तो उसे ऐसा विश्वास बहुत कम दिलाया जाता है।

हमारा लोभ हमें बालक से वस्तुएं सुरक्षित रखने की विधियां सिखाता है। वह हमें बालक को चीनी मिट्टी के स्थान पर न टूटने वाली वस्तुएं देना सुझाता है। यह देखा ही नहीं जाता कि ये न टूटने वाली वस्तुएं बालक के विकास में सहायक भी हैं या नहीं? सच तो यह है कि ऐसी वस्तुएं देने से बालक को मांस-पेशियों की गति की अशुद्धियों का बालक को बिलकुल ज्ञान न होगा। वह लापरवाही से वस्तुएं उठायेगा और गिरने पर न स्वयं दुःखी होगा न उसके माता-पिता उसे कुछ कहेंगे। उसकी उठाने और धरने की क्रियाओं की त्रुटियां उसमें गुप्त रूप से घर कर जावेगी। उसकी वस्तुएं छूने, उठाने और रखने की गतियों में सावधानी या नफासत नहीं आवेगी उसके व्यवहार में वह शोभा और सुन्दरता नहीं आवेगी परन्तु हमारी सभ्यता, समाज और माता पिता को क्या— उन्हें तो अपनी चीजें बचानी हैं। मूल्य रहित मिट्टी की वस्तुओं के लिए बालक के आत्म-विकास का कितना बलिदान! हमें यदि बालक का सच्चा सहायक बनना हो तो हमें माया लोभ के पाप से दूर रहना चाहिए। यह पाप हमें बालक को समझने से अन्धा रखता है और बालक के सम्बन्ध में अन्याय मूलक और कठोर बना कर उसका शत्रु बना देता है।

इस माया मोहन्धता का और नाटक देखिये! बालक अपनी स्वयं *क्रियाओं*

के करने पर अपने कपड़े ख़राब कर लेता है दूध पीने की क्रिया से वह अपना फ्राक गन्दा कर लेता है। पानी भरने या एक बाल्टी से दूसरी बाल्टी में लोटे से पानी डालने की क्रिया से वह अपने कपड़े गीले कर लेता है। वह मिट्टी के साथ खेल कर कपड़े कीचड़ में भर लेता है। खाना खाते समय दाल सब्ज़ी गिरा कर कपड़ों को बिगाड़ लेता है। हम वस्त्र लोभ के कारण बालक को झाड़ते, ताड़ते वा पीटते तक रहते हैं और उस पर यह दोष लगाते हैं कि वह हर समय कपड़े ख़राब करता रहता है। बालक की अपनी स्वयं क्रियाएं उसके विकास के साधन हैं और मिट्टी पानी आदि उसके काम के क्षेत्र हैं। बालक क्योंकि लाचार हैं इसलिये उस पर हम जितने अन्याय कर सकते हैं करते हैं इतने अन्याय हम किसी दूसरे पर नहीं करते। जितना दूसरा दुर्बल हो उतना ही हमारी निकृष्ट प्रकृति उस पर अत्याचार करके तृप्त होती है। जितना दूसरा बलवान हो उतना ही वह हमारी निकृष्ट प्रकृति की रोक थाम करता है। आज मज़दूर जाति जाग्रत और संगठित हो गई है इसलिये पूंजीवादी उस पर अन्याय करने से डरते हैं। दूसरी तरफ स्त्री जाति आज जागृत और स्वाधीन हो रही है इसलिए पुरुष आज उन पर वह अन्याय व कठोरता नहीं कर सकता जो उनकी असहाय अवस्था में प्रचलित थी। बालक अत्यन्त अधीन और असहाय है इसलिए उस पर आधुनिक जागृति के समय में भी असीमित अन्याय होता है। हम सब जानते हैं कि काम करने में कपड़े ख़राब होजाते हैं। कौन सी ऐसी माँ है जिसके रसोई में काम करने से कपड़े ख़राब न होते हों? वह स्वयं को कितनी बार डांटती है या उसका पति कपड़े ख़राब करने के लिये उसे कितनी बार डांटता है। ऐसी निन्दा निरर्थक होगी क्योंकि हम जानते हैं कि काम में कपड़े ख़राब होना स्वाभाविक है। ऐसा करना अन्य कामों के सम्बन्ध में भी सच है। मज़दूर गारे में काम करता है वह कपड़े ख़राबकर ही लेता है। जो मज़दूर कारख़ाने में काम करता है वह अपने कपड़े काले कर लेता है। प्रयोगशाला में भी काम करने वाले अपने कपड़े ख़राब कर लेते हैं। यह सब इसलिए है कि काम में ध्यान होने के कारण कपड़ों की ओर ध्यान नहीं दिया जा सकता। सफल काम के लिए काम में पूरी एकाग्रचित्तता की आवश्यकता है। मां को, मज़दूर को, विज्ञानी को और अन्य क्षेत्रों में काम करने वालों को काम में कपड़ों को ख़राब होने पर कोई दोषी नहीं ठहराता परन्तु बालक को सारा प्रौढ़ जगत इसके लिये दोषी ठहराता है। यदि हम प्रौढ़ों को

अपने काम काज में कपड़े ख़राब करने का अधिकार है तो क्या बालक को जो नई मनुष्य जाति बनाने के काम में चौबीस घण्टे व्यस्त है कपड़े ख़राब करने का अधिकार नहीं ? बालक भी मसीह की भांति प्रौढ़ जगत को मौन रूप से कह सकता है कि तुम मुझे पत्थर मार सकते हो परन्तु पहले यह सोच लो कि तुम इस दोष के स्वयं तो भागी नहीं ?

सारांश

आधुनिक सभ्यता का दूसरा महादोष माया-मोह है इसके कारण माता-पिता तथा अन्य प्रौढ़ बालक की अपनी स्वयं क्रियाओं और स्वयं *विकास* के साधनों में हस्तक्षेप करते हैं :—

(१) बासक को घर की वस्तुएं छूने, उठाने और रखने से सदैव रोकते रहते हैं और इस प्रकार बालक की अपनी स्वयं क्रियाओं के विकास में बाधक बनते हैं ।

(२) बालक की अपनी स्वयं क्रियाओं का क्षेत्र पानी और मिट्टी है इससे कपड़ों का ख़राब हो जाना स्वभाविक और आवश्यक है परन्तु माता-पिता तथा प्रौढ़ उसे कपड़े ख़राब करने पर निन्दते रहते हैं ।

(३) इस माया-मोह के कारण माता-पिता बालक को न टूटने वाली वस्तुएं देते हैं ऐसी चीज़ें बालक की मांस-पेशियों के सयंम को विकसित करने के स्थान पर अधूरा और दूषित कर देती हैं। इस के कारण बालक की चीजें उठाने धरने की क्रियाओं में कोई शोभा नहीं आती ।

(४) इस माया-मोह के कारण माता-पिता बालक की सुविधाओं से विमुख हो जाते हैं। उदाहरणार्थ-चटाई को बचाने के लिए उसे ठंडे मोम-जामे पर लिटा देते हैं। उसकी अपनी स्वयं-क्रियाओं के साधनों पर खर्च करने से कतराते हैं ।

३

हिंसा

हमारी सभ्यता अर्थात् प्रौढ़ समाज और विशेष कर माता–पिता और अध्यापक का तीसरा महापाप जो हमें बालक का सच्चा मित्र और सहायक बनने से रोकता है वह हमारी हिंसा वृत्ति है। सारी दुनियां के परिवारिक जीवन की परीक्षा करने पर यह दुःखदाई परिचय मिलता है कि कोई देश ऐसा नहीं जहाँ परिवारों में बालकों को बुरी तरह पीटा न जाता हो, उन्हें गालियां न दी जाती हों, लात मार-मार कर घर से बाहर न निकाल दिया जाता हो, उन्हें अन्धेरे और डरावने कमरों में बन्द न कर दिया जाता हो, उन्हें भयानक धमकियां न दी जाती हों। यह सब कुछ अत्याचार बच्चों के साथ ही होता है। समाज में एक दूसरे को मारना, क्रोधित होना अशिष्टाचार समझा जाता है। आज कल प्रौढ़ मज़दूर श्रेणी और स्त्रियों ने अपनी ताकत बढ़ा कर अपने आपको इतना मज़बूत कर लिया है कि हम उन पर हिंसा वृत्ति की तृप्ति करते हुए डरते हैं और इस डर से हमारी इस प्रकृति की रोक थाम हो जाती है। परन्तु बालक तो पूर्ण निहत्था है। वह हिंसा का उत्तर हिंसा में नहीं दे सकता, इसलिए आज कल इस पर जितने अत्याचार होते हैं उतने और किसी मनुष्य श्रेणी पर नहीं होते। माता-पिता को समाज ने और नीति ने भी बालकों पर पूर्ण अधिकार दिया है।

बालक की लाचार हालत हमारी हिंसा वृत्ति को और भी बढ़ाती है। हम बालक को केवल उसके दोषों के लिए ही नहीं मारते पीटते, बल्कि उसपर अपने दमन किये हुए क्रोध की भी तृप्ति करते हैं। यदि पिता को दफ्तर में या अपने व्यवसाय में निराशा हुई हो तो उसके क्रोध की तृप्ति बिचारे बालक पर ही होती है। बालक अपने ऊपर अत्याचार को ऐसी सूरत में समझ ही नहीं सकता। कल जिस क्रिया के लिए पिता बालक के साथ हंस और खेल रहा था, आज उसी क्रिया के लिए वह बालक को मार पीट रहा है। दुनियां में कोई भी ऐसा कारावास नहीं जहां क़ैदियों को एक ही गति के लिए एक

दिन शाबाश और दूसरे दिन कठोर दण्ड मिलता हो। बालक सभ्यता का केवल कैदी ही नहीं, बल्कि उसकी स्थिति तो इससे भी कहीं अधिक निकृष्ट है। किसी अपराधी को दण्ड देने के पहले उस के दोष की साक्षी ली जाती है और उसके अपराध का निर्णय किया जाता है। उससे उसकी गति के सम्बन्ध में पूछा जाता है कि तुम्हें क्या कहना है। और इसके अतिरिक्त फैसला दोष लगाने वाला नहीं करता एक निष्पक्ष न्यायाधीश करता है जो सारी स्थिति का निरीक्षण करके उसको उसके दोष के अनुसार दण्ड देता है। इसके विपरीत बिचारे बालक का हाल देखिये। दोष लगाने वाला ही न्यायाधीश है। और बालक को सफाई का कोई अधिकार नहीं दिया जाता और उसके अपराध और दण्डों में कोई अनुपात नहीं होता। कौन नहीं जानता और कौन से सरल माता पिता परीक्षा करके यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि उन्होंने कई बार बालकों पर अपराध-पूर्ण अत्याचार किये हैं। माता-पिता का स्वास्थ्य खराब हो तो बालक बिचारे की सख्ती आती है। कोई समाजिक दुःख होतो बालक को इसका हिसाब चुकाना पड़ता है। एक शब्द में बालक अत्याचारी माता-पिता के दुष्ट भावों की तृप्ति का अवसर बनता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता का बालक की गतियों का न्यायकर्त्ता होना कितना अनुपयोगी है। और समाज का माता-पिता पर बालक को छोड़ देना कितना महापाप है।

हमारी हिंसा वृत्ति बालकों पर शारीरिक दण्ड देने तक सीमित नहीं। आज कल के पढ़े लिखे या शिक्षाप्राप्त माता-पिता बालकों को शारीरिक दण्ड तो कम देने लग गये हैं, परन्तु उनकी हिंसा वृत्ति में परिवर्तन नहीं आया। हिंसा-वृत्ति का प्रकाश केवल पाशविक दण्ड तक सीमित नहीं। यह अनेक रूप धारण करता है। उदाहरणार्थ मां-बाप उसका दोस्तों के साथ खेलना बन्द कर देते हैं; या उसके दोस्तों को यह कह देते हैं कि यह बहुत गन्दा है इसके साथ मत बोलो;या सैर के लिये साथ नहीं ले जाते, घर बिठा जाते हैं या उसे जो खाने की चीज़ बहुत पसन्द होती है उसे नहीं देते, यहां तक कि उसका खाना भी कई बार बन्द कर देते हैं ताकि उसकी रात की नींद में दुःख और भूख से विघ्न पड़ता रहे। केवल यही नहीं कि बालक को शारीरिक और मानसिक क्लेश दिया जाता है। इस हिंसा वृत्ति का अत्यन्त भयानक रूप वह है जब वह घमण्ड के साथ मिलकर निरंकुशता का रूप धारण करती है अर्थात् माता-पिता का अपने आपको और अपनी गतियों को बालक की अपेक्षा सदा ठीक

समझते हैं और उस पर अपनी गतियों और विचार को आत्मिक शासन के नाम पर उन्हें उस पर थोपते हैं या उसके भले बुरे का अपने आपको ही निर्विवाद निर्णायक बनाते हैं और जबरदस्ती उससे अपनी बातें पूरी कराते हैं। निरंकुश राजाओं की भांति वह अपने आप ही बालक के लिए उचित और अनुचित का निर्णय करते हैं। बालक के लिये शासन तो आवश्यक है परंतु वह शासन जो उसके स्वभाव और विकास की आवश्यकताओं पर अधारित हो, न कि हमारी सुविधा, स्वार्थ, लोभ, हिंसा या आत्म-केन्द्रित प्रेम पर। हमारा शासन इसलिये अत्याचारी है क्योंकि वह हमारी अपनी सुविधाओं। अज्ञानता और लोभों से युक्त है। हमारा शासन बालक के जीवन का विकास नहीं करता बल्कि उसके जीवन को कुरूप बनाता है। बालक के जीवन के विकास की परिस्थिति अपनी स्वयं गतियां हैं। परंतु हम उसको चीज़ों को छूने उठाने से सदा रोकते रहते हैं। और इसे आत्मिक शासन का सुशोभित नाम देते हैं। पाठशाला में भी आध्यापक बालक को चुपचाप मूर्ति की तरह से बिठा रखने और उसकी रुचि के विरुद्ध विषयों पर ध्यान देने को शासन समझते हैं। इसी प्रकार माता पिता तथा अध्यापक बालक के लिये स्वयं निर्णय करनेऔर उससे अपनी आज्ञाओं को पालन कराने को शासन समझते हैं। बालक यदि स्वयं निर्णय करना चाहे तो उसे स्वेच्छाचारी कह कर और यदि वह अपने स्वयं निर्णय पर चले तो उसे अवज्ञाकारी कहकर उसके ऊपर अपनी इच्छा लादते हैं। इस प्रकार का शासन सब से दुखदाई अथवा अत्याचार है। ऐसे शासन में बालक की संकेत ग्रहण शक्ति का जी भर कर अनुचित लाभ उठाया जाता है। उनका हमारे लिए जो प्रेम और सम्मान है उसका दुरुपयोग किया जाता है। अतेव बाह्य रूप से बालक पर कोई अत्याचार होता हुआ नहीं लगता। सूक्ष्म शत्रु सदा स्थूल शत्रुओं से अधिक हानिकारक और मृत्यु उत्पादक होते हैं। आज-कल पाशविक दण्ड और मानसिक दण्ड के विरुद्ध तो आन्दोलन है। माता मांटेसोरी की विशेषता यह है कि वह उपयुक्त तीसरे प्रकार की अत्यन्त हानिकारक परन्तु सूक्ष्म प्रकार की हिंसा वृत्ति की ओर माता-पिता तथा अध्यापकों का ध्यान फेरती हैं। उनका विचार है कि जब तक हम इस सूक्ष्म हिंसा और घमंड की वृत्ति से उत्पन्न निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता से मुक्ति न पायें तब तक हम बालक के सच्चे माता-पिता तथा अध्यापक नहीं हो सकते। माता मॉटेसोरी के ये विचार अध्यापक तथा माता-पिता से यह मांग

करते हैं, कि वह अपनी आत्म परीक्षा करें और अपने आप को निरंकुशता के पापों से मोक्ष दें ।

माता मॉण्टेसोरी माता पिता और अध्यापकों के लिए क्रोध और घमण्ड के स्थान पर दीनता और प्रेम के भावों को बाल पालन-पोषण और शिक्षा के. लिए आरम्भिक और अन्तिम उपकरण इस लिए समझती हैं कि यह बालक के स्वभाव को समझने के लिए आवश्यक हैं। जब तक हमारी प्रकृति निरंकुश रहेगी तब तक वह काली रात की न्याईं हमें बालक के स्वभाव की सच्ची महत्वता, सुन्दरता और आवश्यकताओं के देखने से वन्चित रखेगी। हम इस अन्धकार और अन्धता के कारण बालक पर उसके जीवन दमन का अत्याचार करके उसके भीरुता, झूठ, मिथ्या भय, स्वेच्छा चारता, नीन्द्रा-हीनता जैसे अस्वास्थ पूर्ण अवगुण उत्पन्न करने का पाप करते रहेंगे। ऐसे अवगुण जन्म जात नहीं वातावरण से उत्पन्न होते हैं और बालकों का वातावरण माता पिता तथा अध्यापक है परन्तु यह वातावरण आत्म-केन्द्रित माया लोभ और निरंकुशता की वृतियों के कारण बालक और इस लिए समाज में अवगुणों, की महामारी हैं जो समय २ पर विश्व युद्ध की सर्वस्व हत्या में स्थूल प्रकाश पाते हैं।

साराँश

बालक पर तीन प्रकार की हिंसा का प्रयोग होता है ।

(१) *पाशविक दण्ड*—बालकों को मारा और पीटा जाता है और उस मार पीट की मात्रा बालक के दोष पर आधारित नहीं होती—

(क) कई बार उसे बिना दोष के मारा जाता है। ऐसी मार पीट प्रौढ़ के अतृप्त और दमन क्रोध की तृप्ति की इच्छा के कारण है ।

(ख) जहां बच्चे का दोष होता भी है वहां बालक पर मार पीट की मात्रा उसके दोष पर केवल आधारित नहीं होती । माता-पिता तथा अध्यापक की मानसिक स्थिती पर भी आधारित होती है। यदि माता-पिता तथा अध्यापक अस्वस्थ हों या पहले ही क्रोधित हों तो दण्ड की मात्रा कहीं अधिक बढ़ जाती है

(२) *मानसिक दण्ड*—बालक को उसके खेल साथिओं के साथ खेलने से रोक देना या उसे उनकी नज़रों में गिरा देना या उसे ताने देते रहना, मानसिक दण्ड देना है ।

(३) तीसरे प्रकार की हिंसा बालक की संकेत शक्ति के दुरुपयोग का रूप लेती है। बालक पर अपनी इच्छा थोपते रहना उस पर सब से बड़ी कठोरता है ।

४

अज्ञानता और अशिक्षता

हमारी सभ्यता का चौथा महापाप यह है कि हम बालक के मन के सम्बन्ध में, उसकी विकास परिस्थितियों के सम्बन्ध में, पूर्ण अज्ञानी और अबोध होकर बाल पालन-पोषण को शारीरिक सेवा तक ही सीमित रखते हैं। हम बालक के शारीरिक विकास के लिए अच्छे वातावरण की उपस्थिति का यथावस्था और यथाबोधता ख्याल रखते हैं। हम उसे अच्छा दूध और अच्छा खाना देते हैं। उसे गर्मी, सर्दी से बचाने के लिये उपयोगी और सुन्दर कपड़े भी पहिनाते हैं, उसकी शारीरिक रक्षा के लिये टीके आदि भी लगवा देते हैं। उसे मच्छरों से बचाने के लिये मच्छरदानी या मच्छरों का तेल भी लगाते हैं। उसके शारीरिक रोगी होने पर डाक्टर को बुलाकर उसके रोग की चिकित्सा भी करते हैं। बालक की रुग्नावस्था में उसे असाधारण प्रेम और ध्यान देते हैं। यदि डाक्टर माता को अपने खाने पीने में परिवर्तन के लिये कहे तो वह भी बड़ी खुशी २ और धार्मिक रूप से पूरा करती हैं। यह सब कुछ पढ़े लिखे और बुद्धिमान माता पिता करते हैं। परन्तु वह बालक के मानसिक रूप से फलने फूलने की परिस्थितियों का कोई सन्तोषजनक ध्यान नहीं रखते। उसके मानसिक विकास के लिये अनुकूल मानसिक वातावरण का प्रबन्ध नहीं करते। उसके मन-साधनों के लिये कोई सामग्री उपस्थित नहीं करते। बालक को एक शरीर समझ कर उसकी मानसिक आवश्यकताओं से पूर्ण उदासीन रहते हैं। साधारण पढ़े लिखे माता पिता भी अपने मन में यह प्रश्न तक नहीं उठाते कि उन्हें बालक के मानसिक विकास के लिये क्या करना चाहिये। किस प्रकार का वातावरण और साधन उपस्थित करना चाहिये। जैसे शारीरिक आवश्यकतायें हैं वैसे ही मानसिक आवश्यकतायें भी हैं। और जैसे बाल-शारीरिक विकास के लिये स्वास्थ्य विधि, खान-पीन-विज्ञान का ज्ञान और शिक्षण आवश्यक है वैसे ही मानसिक विकास विधि और मानसिक विकास साधन के ज्ञान और शिक्षण की आवश्यकता है।

पुनः हम बालक को किसी असामाजिक वृति के होने के कारण बालक को वह असाधारण ध्यान व प्रेम नहीं देते जो हम उसे शारीरिक रोगी होने पर

देते हैं। हम दुःखी तो ज़रूर होते हैं परन्तु इसलिये नहीं कि बालक अपनी असामाजिक वृति अर्थात् 'झूठ बोलने, चोरी करने, लड़ाई झगड़ा करने' इत्यादि से रोगी हो गया है और इस लिये दुःखी है। हम बालक के मानसिक रोग के दुःख में दुःखी नहीं होते जैसे हम बालक के शारीरिक रोग के दुःख में दुःखी होते हैं। हमारा दुःख सामाजिक दुःख है। बालक के झूठे और चोर होने पर इसलिये दुःखी होते हैं कि इसमें हमारे घर की बेइज्ज़ती है। हमारे दुःख का केन्द्र बालक नहीं परन्तु अपने सन्मान के खोने का भय है। ऐसी अवस्था में हमारी बालक के साथ उसके मानसिक रोगों के लिये कोई सहानुभूति नहीं। और ना ही उसे इस रोगी अवस्था में हम किसी मनोवैज्ञानिक को बुलाकर दिखलाते हैं। हम उसे झाड़ते ताड़ते रहते हैं और समझते हैं कि ऐसा करने से उसकी असामाजिक प्रवृति नष्ट हो जायेगी। यह वृति हमारी अज्ञानता और अनाड़ीपन का चिन्ह है।

दुःख तो इस बात का है कि बालक के असामाजिक व्यवहार के लिये हम अपना कोई दोष नहीं समझते। हम समझते हैं कि जब हम झूठे और चोर नहीं तो यदि बालक झूठा और चोर बन जावे तो इसमें हमारा क्या दोष है ? यह तो बालक का अपना ही दोष है। माता मॉण्टेसोरी का कथन है कि अपनी असामाजिक वृति के लिये बालक दोषी नहीं परन्तु हम दोषी हैं। हम बालक के मानसिक विकास के लिये उपयोगी वातावरण उत्पन्न नहीं करते इसीलिये बालक असामाजिक वृतियां उत्पन्न कर लेता है। बालक के मानसिक विकास के लिये विशेष सामग्री चाहिये जो उसकी क्रियाओं के भाग बन सके। यदि हम ऐसी सामग्री उपस्थित न करें और दूसरी ओर बालक को गतियाँ करने से रोकते रहें तो बालक में असामाजिक वृतियां उत्पन्न होनी स्वभाविक हैं। मानसिक शक्ति बाकी सब शक्तियों की भांति नष्ट नहीं हो सकती यदि वह अपने विकास के सामान न पाकर, अपना विकास साधन न कर सके तो उसके लिये विनाशकारी गतियों में व्यस्त होना अवश्यम्भावी है। माता मॉण्टेसोरी ने इस तत्व को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है।

(१) कई बच्चे कल्पनात्मक बन जाते हैं। वह वास्तविक दुनियां में अपनी रुचि और ध्यान नहीं लगा सकते। ऐसे बच्चे बड़े चुलबुले होते हैं। कभी एक चीज़ को छूते हैं कभी दूसरी को छूते हैं। कभी एक काम करना शुरु करते हैं

कभी दूसरा फिर उसे छोड़कर तीसरा। इस लिये उनकी प्रवृति चुलबुली और अनुशासित हो जाती है, वह किसी काम में एकाग्रचित होकर नहीं लग सकते क्योंकि उनकी रुचि काल्पनिक दुनियां में है। चीज़ें और काम उन्हें उत्तेजित तो ज़रूर करते हैं परन्तु उनकी रुचि के साधन नहीं बनते। ऐसे बालकों का मन स्वयंगतियों द्वारा शासित नहीं हुआ इसलिये वे हालात के हवाले हो जाते हैं। बालक के चुलबुले-पन का अर्थ यह है कि उसका मन विकसित नहीं हुआ जो कि वातावरण पर प्रभुता पा सके।

चुलबुले-पन और ध्यान की अस्थिरता के अतिरिक्त कल्पनात्मक बालक किसी भी घटना को ठीक तरह वर्णन नहीं करते अपनी कल्पना को वास्तविक समझ कर उनका वर्णन करते हैं। किस माता पिता को यह अनुभव नहीं कि उनके बालक कई बार ऐसी घटनाओं का वर्णन करते हैं जो कि कभी नहीं हुई या छोटी सी बात का बतंगड़ बना देते हैं। कल्पनात्मक बालक ऐसा वर्णन बार बार करते हैं। बालक कल्पनात्मक इस लिये हो जाते हैं कि उनको वातावरण में क्रियाओं के साधन नहीं मिलते। साधारणतया बालकों को घरों में कुछ खिलौनों के सिवाय किसी भी चीज़ के छूने, उठाने या अपनी स्वक्रियाओं में लगाने की आज्ञा नहीं होती। अब ये खिलौने कितने ही मूल्यवान क्यों न हों बालक की स्वयंगतियों के भाव नहीं बनते इसलिये बालक इन्हें तोड़ फोड़ देते हैं या बहुत जल्दी उनसे उकता जाते हैं। खिलौनों के तोड़ने या उनसे उकता जाने का कारण यही है कि वह बालक की स्वयं गतियों के केन्द्र बनने के अयोग्य हैं। ऐसी अवस्था में जब बालक के पास स्वयंगतियों का वातावरण न हो तो उसके लिये काल्पनिक दुनियां की वृतियों में तृप्ति पाना स्वभाविक है। बालक की मानसिक शक्ति को क्रियाओं में व्यस्त होना ही है। इसलिए जब उसे स्वाभाविक और जीवन नियुक्त गतियों का सामान नहीं मिले तो कल्पना की गतियों में व्यस्त होना आश्चर्यजनक नहीं।

बालक के कल्पनात्मक होने पर माता पिता अपने आप को दोषी ठहराने के स्थान पर बालक को दोषी ठहराते हैं। कहते हैं, जितना ही बड़ा होता जाता है उतना ही बिगड़ता जाता है। ठीक है बालक जितना बड़ा होता जाता है बिगड़ता जाता है लेकिन उसका कारण बालक स्वयं नहीं माता पिता हैं। बालक ज्यों २ बढ़ता है उसकी मानसिक आवश्यकताएं बढ़ती जाती हैं परन्तु माता पिता

अपनी अज्ञानता के कारण बालकों को ऐसा वातावरण देते हैं जो उनकी मानसिक मांगों को पूरा करने के स्थान पर ठेस लगाता है। अतृप्त अपमानित और घायल बालक कल्पना की दुनियाँ में अपनी तृप्ति ढूंढता हैं।

(२) कई बच्चे होशियार होते हैं और फिर एक दम उनके जीवन में फ़र्क़ आ जाता है उदाहरणार्थ एक बालक पहले होशियार था परन्तु एक दम बुद्धू बन गया वह अब प्रत्येक बात ग़लत सुनता और ग़लत ही करता है। उसे चाकलेट बा-जार से लाने को कहा तो वह टमाटर ले आया ; यदि उसे एक काम कहा जाता तो वह दूसरा काम करता। पढ़ाई में भी वह पीछे रह गया। वह सुन कर भी समझता नहीं था उसे समझाने की कोशिश असफल होती थी। बालक के ऐसी हालत में 'पहुंच जाने' का अर्थ यह है कि उसने अपने मन के गिर्द सूक्ष्म दीवारें बनाली हैं और इसलिए वह अपने वातावरण से कट गया है। यह उसकी सूक्ष्म दीवारें अज्ञात रूप से बनी हैं इसलिये यह बालक की ज्ञात जिद् और ज्ञात अव-ज्ञाकारी अवस्था से कहीं अधिक पतित और रोगी अवस्था है। माता पिता तथा अध्यापक साधारणतः ऐसी अवस्था में बालक पर यह दोष लगाते हैं कि वह *जान बूझकर* नहीं समझना चाहता। ठीक है वह समझना नहीं चाहता लेकिन यह ग़लत है कि वह *जान बूझकर* नहीं समझना चाहता। वातावरण उसके लिये इतना दुखदाई प्रमाणित हुआ कि वह अपनी सूक्ष्म दीवारों के अन्दर ही रहता है। माता पिता व अध्यापक को क्या कभी पता लगता है कि वह बालक को किसी गति पर अत्यन्त क्रोधित होकर, इस वास्तविक दुनियां से निर्वासन दे देते हैं ? ऐसे दुःखदाई अनुभवों से बालक वास्तविकता से सम्बन्ध तोड़ देता है और कल्पना की दुनियां में रहने लगता है। अब वह हमारी धमकियों से ऊपर हो गया है कुछ कहो कुछ सुनाओ उस पर रत्ती भर भी असर नहीं होता उसकी सूक्ष्म दीवारें फोलादी लोहे से भी अधिक अजेय हैं जो हमारी धमकियों से तो क्या बन्दूक के गोलों से भी नहीं टूट सकतीं। यह रोगी अवस्था अत्यन्त ख़राब होती है इससे बालक को उभारना अत्यन्त कठिन होता है। ऐसा बालक ठीक हो सकता है जब उसे असाधारण प्रेम और सहानुभूति का वातावरण मिले। उसकी इस दुनियाँ में रुचियों को धीरे २ और धैर्य के साथ वापिस लाया जावे ताकि वह एक दिन अपनी सूक्ष्म दीवारों को तोड़ फोड़ कर इस दुनियां का बन जावे, परन्तु उसके लिये शिक्षा की आवश्यकता है कि किस प्रकार बालक की रुचि

जानी जावे और किस क्रम अनुसार उसे उपयोगी सामग्री स्वंय क्रिया के लिये दी जावे।

(३) निर्बल बालक—कई बालक ऐसे होते हैं जो हर समय माता पिता अर्थात् प्रौढ़ों पर निर्भर रहते हैं वह प्रौढ़ों से अपनी असाधारण आवश्यकताएं पूरी कराते हैं। जैसे वह बड़ों को ही कपड़े पहनाने के लिये, नहलाने के लिये, बाल बनाने के लिये, जूते पहनाने के लिये कहते रहते हैं वह सदा बड़ों के साथ रहना चाहते हैं उन्हें अपने साथ खेलने को कहते हैं और खेलते हैं वे उनसे अलग नहीं होना चाहते। ऐसे बालक 'निर्बल बालक' कहलाते हैं जो स्वयं कुछ नहीं कर सकते, जिनकी अपनी सूझ बूझ नहीं होती जिनकी अपनी इच्छा नहीं होती और यदि होती भी है तो उनके अपने बड़ों की होती है। ऐसे विपथ बालक को माता पिता तथा अध्यापक बड़े पसन्द करते हैं क्योंकि ऐसे बालक उनकी इच्छाअनुसार चलते हैं। ऐसे बालकों को अपना लाडला समझते हैं इस लिये वह उन्हे अधिक प्यार करते है और इस मोह के कारण वह उसे अनुचित सहायता देते रहते हैं ऐसा बालक आलसी हो जाता है। आलस्य मन की रोगी अवस्था का नाम है शक्तिहीन अवस्था का नाम है, भाव रहित अवस्था का नाम और है इसलिये जीवन से निर्वासन का नाम है। ऐसे बालक सदा ही थके रहते हैं औरउनकी जीवनयात्रा निराशा पूर्ण होती है।

यह बालक बिचारे ऐसे क्यों हो गये? इस लिये कि वह माता पिता के मोह के शिकार बन गये हैं और इस मोह के कारण माता पिता ने उन्हें कुछ न करने दिया। उन्हे गति हीन रख कर उन्हें वातावरण के साथ सम्बन्ध और मेल उत्पन्न नहीं करने दिया। मानसिक शक्तियों का उद्देश्य स्वयंगतियों द्वारा स्वतन्त्रता लाभ करना है और माता पिता तथा शिक्षकों का प्रयत्न यह होना चाहिये कि वह बालक की मानसिक शक्तियों को अपने साथ सम्बन्धित करने के स्थान पर वातावरण में व्यस्त करके उसके मन की स्वतन्त्रता का विकास करें। बालक के क्रियाएं करने के स्थान पर उन्हें स्वयं कर लेना बालक के निर्णय पर अपने निर्णय-संकेत द्वारा थोपना बालक के मानसिक प्राण ले लेना हैं। भला मोही माता पिता को यह अनुभव होता है कि वह किस हत्या के भागी बन रहे हैं? और किस के सम्बन्ध में बन रहे हैं? शिशु हत्या के लिये तो समाज और राजनीति मौत की सजा देती है क्या शिशु मानसिक हत्या के लिये कोई सज़ा नहीं होनी चाहिये?

यदि माता पिता ने ऐसा अत्यन्त महापाप किया हो तो उसके परिशोध के लिये उन्हें बालक को सामग्री देनी चाहिये और उसकी गतियों के लिये सहानुभूति और साहस देना चाहिये। आप अब उसे स्वयँ बातें न सुझाकर, उसे अपने निर्णय स्वयँ करने दीजीयेगा। ऐसे साधन करने के लिये आप को बाल मनोवैज्ञानिक ज्ञान, शासन, और शिक्षण चाहिये।

(४) कई बालक ऐसे होते हैं जो प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं इसलिये नहीं कि उस चीज़ की उन्हें आवश्यकता है या उस वस्तु के लिये उन्हें प्यार है परन्तु केवल अधिकार प्राप्ती के लिये। यदि वे घड़ी देखते हैं तो उस पर अधिकार करना चाहते हैं यह नहीं कि उससे वक्त देखना चाहते हैं या उससे प्रेम करते हैं परन्तु अधिकार जमाने के लिये उसे छीनना चाहते हैं। यदि एक ही घर में दो बलवान बालक हों तो वह वस्तुओं पर सदा ही झगड़ते रहेंगे चाहे वह चीज़ उनके काम की भी न हो और इसीलिये घर में सदा चीज़ों पर लड़ाई झगड़ा हुआ करता है। यही घर में पली हुई प्रकृति जाति विरोधों, और विश्व युद्धों का कारण बनती है।

यह प्रकृति क्यों कर बच्चों में आ जाती है! यह सब साधारण जन्म जात अवगुण नहीं यह मानसिक शक्ति के विपथ का चिन्ह हैं। जब प्रेम विपथी हो जाता है तो वह अधिकार-अनुराग बन जाता है। बालक के लिये अपने वातावरण से अनुराग करना अत्यन्त स्वभाविक है क्योंकि वह उसके मन विकास की गतियों का साधन ह परन्तु जब बालक को ऐसा वातावरण मिलता है जो उसकी मानसिक शक्तियों का गतिभाव नहीं बन सकता तो वह बालक विपथी हो जाता है और ऐसे विपथी बालक चीजों में अपने विकास के साधन नहीं देखते परन्तु वे उन पर अधिकार जमाना चाहते हैं। कंजूस मक्खीचूस लोग और साम्राज्यवादी युद्ध नेता इस बालपन के विपथी जीवन के बढ़े हुए स्वरुप हैं ।

(५) शक्ति के भूखे बालक—शक्ति की भावना दो प्रकार की होती है एक शक्ति भावना अपने आप को बलवान करके वातावरण पर प्रभुता की इच्छा है। उदाहरणार्थ जब बालक अपनी स्वयं गतियों द्वारा अपने वातावरण के साथ मेल में आने और प्रभुता पाने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार स्वतन्त्र जीवन को प्राप्त करना चाहता है तो वह ऐसा प्रयत्न उसकी ऐसी शक्ति

की भावना का शुभकर रूप है । दूसरी शक्ति भावना वस्तुओं और पदों को दूसरों से अपहरण करने और छीनने की भावना है । यह पहली शक्ति का निकृष्ट रुप है । जब बालक पहिले प्रकार की शक्तिभावना वातावरण द्वारा विकसित न कर सके तो विपथ जाकर वह दूसरे प्रकार की भावना में पड़ जाता है। आपने ऐसे बालक देखे होगें जो अपनी बात अपने मोही माता-पिता से पूरी कराते हैं स्वयं शक्ति न रख कर वह शक्तिवान माता पिता द्वारा वस्तुऐं प्राप्त करते रहते हैं। शुरु २ में तो मोही माता पिता बालक की इच्छाओं को पूरा करते रहते हैं परन्तु क्योंकि इस दूसरे प्रकार का पतित शक्ति भाव असीमित तृप्ति मांगता है इस लिये माता पिता को अनुभव होने लगता है कि उन्होंने अपने बच्चे को ख़राब कर लिया है । उन्हें बालक की इच्छाओं का यन्त्र नहीं बनना चाहिये था । माता पिता का दोष यह नहींकि उन्होंने बालक की इच्छायें पूरी कीं परन्तु उनका महापाप तो यह है कि उन्होनें बालक को स्वतन्त्रता उत्पादक शक्तिभाव के विकसित होने का वातावरण नहीं दिया और प्रत्युत उसे विपथी कर दिया ।

(६) आत्महीन बालक—माता पिता का यह अनुभव है कि उनके कई बालक भीरू, आत्म विश्वासरहित, अपने आप को सदा हीन समझने वाले हो जाते हैं । वह किसी भी निर्णय करने में संकोच करते हैं, वह किसी कठिनाई के आने पर उसका दृढ़ता से सामना नहीं कर सकते, वह किसी आलोचना का उत्तर नहीं दे सकते । किसी आलोचना का उत्तर केवल निराशा तथा अश्रुधारा में देते हैं ऐसे बालकों का जीवन वैसे ही दुःखी होता है जैसे कोई व्यक्ति आकाश और भूमि के बीच में लटक रहा हो ।

बालक ऐसी दुःख पूर्ण मानसिक रोगी अवस्था में क्यों पहुँच जाते हैं ? इसका उत्तर एक ही है कि माता पिता तथा अध्यापक बालक की स्वयंगतियों की निन्दा करते रहते हैं उसे वे कहते रहते हैं कि वह यह नहीं कर सकता, वह वह नहीं कर सकता । उदाहरणार्थ बालक यह देखता है कि यदि अतिथि से या नौकर तक से भी गिलास टूट जावे तो उसे कुछ नहीं कहा जाता परन्तु यदि उससे चीजें टूट जावें तो उसे झाड़ा जाता है और कहा जाता है कि "तुम्हें हज़ार बार रोका है कि तुम वस्तुओं को मत छुओ फिर भी तुम उठाते हो, न जाने तुम्हें क्या हो गया है, तुम्हें मालूम नहीं कि तुम चीजें नहीं उठा
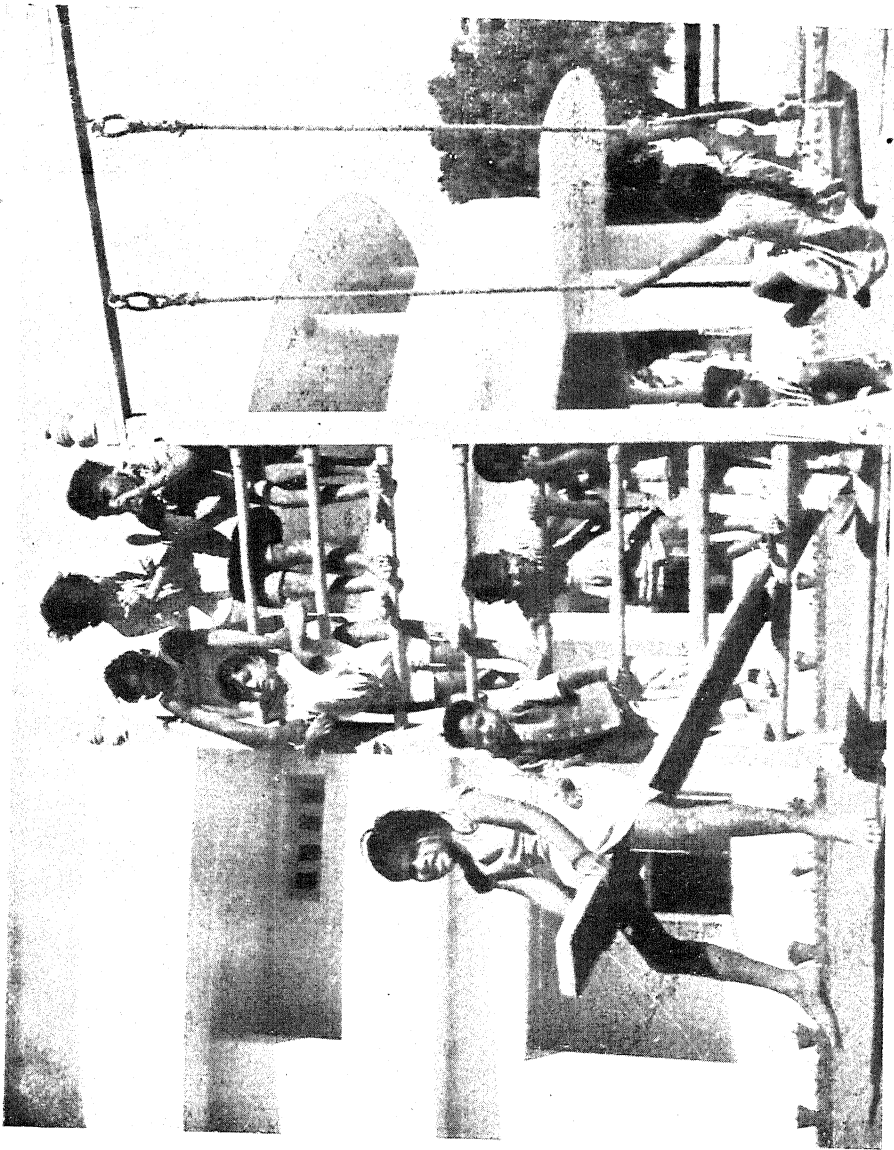
बिड़ला मांटेसोरी स्कूल पिलानी - बालकों के खेलने का एक दृश्य

सकते," बालक ऐसे शब्दों से इस प्रकार अनुभव करता है कि वह एक हीन अमहत्वपूर्ण व्यक्ति है जिसका मोल वस्तुओं से भी कम है। हम आजकल नौकरों के काम में हस्तक्षेप करने से डरते हैं, उन्हें काम से बार २ उठाने से डरते हैं कि कहीं नौकर भाग न जावे। परन्तु बालक को उसकी गतियों से, जिन्हें हम झूठ मूठ खेल कहते हैं, और जो वास्तविकता में जीवन रचनात्मक गतियां हैं, बार २ उठाने में संकोच नहीं करते क्योंकि बालक तो बिका हुआ गुलाम है न! वह हमें छोड़ कर कहां जा सकता है। उसकी लाचारी, हमारे अत्याचारों पर भी उसे हमारे साथ बाधें रखती है! ऐसी हालत में बालक किस तरह अपना आत्म-सम्मान रख सकता है? वह कैसे उत्तरदायित्व का बोध, (जिसका अर्थ यह है कि 'काम को पूरा किये बिना आराम न लो') बढ़ा सकता है, जब कि उसे ऐसा करने से बार २ और लगातार रोका गया है जब बालक को उसे अपनी हीनता, अपनी लाचारी का बोध कराया जाता हो तो उसे आत्म-निर्णय और उत्तरदायित्वों का बोध क्योंकर हो सकता है। इससे बड़ी और क्या निराशा हो सकती है कि जब मनुष्य यह अनुभव करे कि मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं कुछ नहीं हूँ। क्या ऐसा मानसिक रूप से अधरंगी बालक स्वस्थ बालक के साथ जीवन की दौड़ लगा सकता है? कदापि नहीं! वह तो दौड़ लगाने की सोच भी नहीं सकता। उसकी निराशा कि वह कुछ नहीं कर सकता, उसके जीवन संग्राम को भस्म कर देती है। क्या माता पिता को पता लगता है कि बालक की गतियों की अशुद्धता की निन्दा और उस पर निराशा बालक के लिये कोई भविष्य नहीं छोड़ती?

(७) लोभी बालक—माता पिता की यह अक्सर शिकायत रहती है कि उनके बालक बड़े लोभ व लालच से खाते हैं और फिर पेट दर्द इत्यादि शारीरिक दुःख उत्पन्न कर लेते हैं। बालक के इस खाने के लोभ का उसके मानसिक जीवन के साथ सम्बन्ध है। यह देखा गया है कि निम्न और दुर्बल बालक को खाने की इच्छा नहीं होती वह पीले ज़र्द रहते हैं और उन्हें खुली हवा कोई असर नहीं करती। ऐसे बालकों को देखा गया है कि उनकी भोजन से आवृति का कारण उनकी मानसिक दशा है। बाल मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे बालकों की खोज की है और उन्हें ज्ञात हुआ है कि बालकों की खाने की गति एक जैसी नहीं। कई धीरे धीरे खाते हैं कई जल्दी खाते हैं केवल यही नहीं कई बालक

एक दो समय में ही अपना पेट भर लेते हैं, कई बालकों की शारीरिक गठन ऐसी होती है कि वे थोड़े २ समय के बाद थोड़ा २ खाकर अपनी पूरी खुराक कर सकते हैं। इसलिये माता पिता ऐसे बालकों पर जल्दी २ खाने की गति या दो वक्त खाने के नियम ठूसें तो ऐसे बालक अपनी आत्मा के चारों ओर सूक्ष्म दीवारें बना लेते हैं और खाने से विमुख हो जाते हैं क्योंकि खाने की क्रिया दुःख से सम्बन्धित हो गई है।

बलवान बालक लोभी हो जाते हैं। हम सब ही जानते हैं कि पशु अधिक नहीं खा जाते, यदि वह बीमार हों तो बिल्कुल नहीं खाते अतः इन पशुओं में भी रक्षाकारी बोध होता है जो उन्हें नहीं खाने देता। मनुष्य में भी ऐसा रक्षाकारी बोध है परन्तु जब उसकी मानसिक शक्ति विपथी हो जाती है तो यह रक्षाकारी बोध दुर्बल तथा नष्ट हो जाता है और मानसिक शक्ति तभी विपथ होती है जब उसकी गति की सामग्री तथा वातावरण न मिले। मॉण्टेसोरी स्कूलों में देखा गया है कि लोभी बालकों को जब स्वयंगति द्वारा विकास की सामग्री मिल जाती है तो फिर खाना लोभ से नहीं खाते। उनका खाने में मोह नहीं रहता।

वर्णन स्पष्ट है कि बालक की असामाजिक वृतियाँ और व्यवहार जन्मजात नहीं। वे प्रतिकूल वातावरण के कारण हैं और यह प्रतिकूल वातावरण माता पिता की अनुचित वृतियों अर्थात आत्म केन्द्रित प्रेम, माया, लोभ, निरंकुशता बालक के पालन-पोषण की अज्ञानता और अनाड़ीपन के कारण होती हैं। मानसिक रुप से स्वस्थ बालक ही हमारे स्वप्नों की आदर्श दुनियां की रक्षा कर सकते हैं। इसके बिना हमारी प्रत्येक उन्नति हमारे पतन की कसौटी है। परन्तु यह तब ही सम्भव है जब माता पिता और शिक्षक उपरोक्त चार महापापों से मुक्त हो जावें।

सारांश

बालक के सम्बन्ध में आधुनिक समाज का चौथा महापाप अज्ञानता और अशिक्षता है—

(क) जिस प्रकार अँधेरा सामाजिक बुराईयों के करने का आश्रय बनता है वैसे ही बाल-मन के प्रति अज्ञानता और अशिक्षता हमारी आत्म-केन्द्रित

प्रेम, माया-मोह और हिंसा जैसी बुरी प्रवृत्तियों द्वारा बालक पर अत्याचार करने का आश्रय बनती है।

(ख) एक ओर जहां अज्ञानता और अशिक्षता हमारे आत्म-केन्द्रित प्रेम माया-मोह और हिंसा की बुरी प्रवृत्तियों की पुष्टि करती हैं वहां दूसरी ओर यह हमें बालकों के विकास क्रियाओं के साधनों को उपस्थित करने से उदासीन रखती हैं।

(ग) अज्ञानता और अशिक्षता के इन दोषों के कारण बालक की मानसिक शक्ति अपने विकास पथ में रुकावट पाकर विपथ हो जाती है और यह विपथता अनेक रूप लेती है।

(घ) जिस प्रकार यदि पानी के प्रवाह में बाधा पड़ जावे तो पानी सब ओर बिखर जाता है इसी प्रकार जब मानसिक शक्तियां विपथ हो जावें तो वह अनेक असामाजिक रूपों में प्रकाश पाती हैं। माता मागटेसोरी ने निम्न-लिखित विपथता के कुछ रूप दिये हैं—

१. *कल्पनात्मिक-बालक*—कुछ बालक अपनी मानसिक शक्तियों को काल्पनिक दुनिया में व्यस्त करते हैं। ऐसे बच्चों का ध्यान अस्थिर रहता है और वह साधारण घटनाओं को बढ़-चढ़ कर बताते हैं।

२. *बन्द बालक*—ऐसे बालक अचानक ही बुद्धू हो जाते हैं। वह ग़लत ही सोचते व समझते हैं। ऐसे बालकों ने ऐसी मानसिक दीवारें बना ली हैं जिन्हें ज़ोर व ज़बरदस्ती से तोड़ा नहीं जा सकता।

३. *निर्बल बालक*—कुछ बालक अपने साधारण जीवन की क्रियाओं के लिए भी औरों पर निर्भर करते हैं। वह अपने जीवन के साधारण निर्णयों के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहते हैं।

४. *अधिकार का भूखा बालक*—कुछ बालक हर वस्तु पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं चाहे यह उनके किसी प्रयोग की या हित की हो या न हो।

५. *शक्ति का भूखा बालक*—कई बालक शक्ति के भूखे होते हैं वह सदा यही चाहते हैं कि दूसरे उनकी अँगुलियों पर नाचें।

६. *आत्म-हीन बालक*—ये बालक अपने में कोई विश्वास नहीं रखते, इनका जीवन निराशापूर्ण होता है ।

७. *लोभी बालक*—कई बालक खाने-पीने के लोभी हो जाते हैं, वह अपनी ज़रूरत से अधिक खाना चाहते हैं ।

मानसिक विपथता के उपरोक्त कुछ ही रूप हैं । वह सब मानसिक वृत्तियां जो व्यक्ति को दुःखी रखती हैं और वह सब असामाजिक व्यवहार जो दूसरों और स्वयं को दुःखी रखते हैं, वह इसके कुरूप हैं ।

———

५

बालक अपने जीवन का स्वयं ही निर्माण करता है

माता मॉण्टेसोरी ने बाल मन के सम्बन्ध में कई सचाईयों की खोज की है। जिन में से मुख्य ये हैं:—

बालक अपने मानसिक जीवन का अपनी जीवनी शक्ति के नियम अनुसार निर्माण करता है। जब माता और पिता के सैल युक्त होकर गर्भाशय में एक नया सैल बनाते हैं तो यह सैल अन्य सैलों से भिन्न नहीं होता। इस सैल के क्षुद्र रूप में भी बालक की गठन अर्थात् नाक, कान आंखे, मुँह, टांगें इत्यादि कुछ नहीं होते। यह सैल पूर्णता सरल होता है परन्तु इस सैल का गुण यह है कि यह अपनी जीवन शक्ति के आदर्श अनुसार नया व्यक्तित्व बनाने की योग्यता रखता है। इस सैल के अन्दर अपने आप को अधिक हिस्सों में बांटने की विचित्र योग्यता होती है। यह बांटने के गुण द्वारा अनगिनत हो जाता है और यह अनगिनत सैल भिन्न २ अंग बनाते हैं और यह अंग क्रमानुसार बनते हैं। पहले पहल जो अंग बनता है वह दिल होता है जो मां की हर एक धड़कन पर दो बार धड़कता है। और इसी प्रकार अन्य अंग विकसित होते हैं और मज़ा यह है कि किसी भी सैल के निरीक्षण से हम यह नहीं कह सकते कि इस की जीवनी शक्ति क्या शारीरिक रूप धारण करेगी। देखिए एक सरल से सैल में कितनी रचनात्मक शक्ति है कि वह अनगिनत सैल का एक बहुत पेचीदा गठन प्राप्त शरीर बना लेता है।

रचनात्मिक शक्ति माता में नहीं, परन्तु सैल में है। माता ने यह निर्णय नहीं करना कि बालक के कान कहाँ हों, उस की नाक कहां हो, इस गठन का जर्म सैल की रचनात्मक शक्ति ने ही निर्णय करना है। यदि इस जर्म सैल में रचनात्मक योग्यता न रहे तो माता कुछ भी नहीं कर सकती। माता का उद्देश्य केवल इस रचनात्मक जर्मसैल के लिए उपयोगी वातावरण उपस्थित करना है अर्थात उसे ऐसा रुधिर पहुंचाना है जिस में वह अपनी रचनात्मक क्रिया उत्तम रूप से पूर्ण कर सके।

यही सच्चाई बालक के मन के सम्बन्ध में भी लागू है। जिस प्रकार बालक की जीवनी शक्ति उस के शारिरिक गठन का निर्माण करती है वैसे ही वह उसके मन की गठन का निर्माण करती है। उदाहरणार्थ शेर की जीवनी शक्ति केवल शेर के शरीर को ही नहीं बनाती परन्तु उस के स्वभाव का भी निर्माण करती है अर्थात उसके मन को वीरता का रूप देती है। उसी प्रकार लोमड़ी की जीवनी शक्ति केवल लोमड़ी का शरीर ही नहीं बनाती परन्तु उस के स्वभाव का भी निर्माण करती है अर्थात उस के मन को चतुराई का रूप देती है। यही तत्व मनुष्य की जीवनी शक्ति के लिए भी सत्य है। मनुष्य की जीवनी शक्ति में केवल मनुष्य शरीर निर्माण करने की ही शक्ति नहीं परन्तु उस में मनुष्यत्व के निर्माण की भी शक्ति है। प्रौढ़ समाज, विशेष-कर माता पिता ने बालक के मन को अपने भ्रम और विश्वास अनुसार घड़ना नहीं। हम अपने आत्म केन्द्रित प्रेम में यह समझते हैं कि बालक कुछ नहीं है, जो कुछ हम चाहें उसे बनाते हैं। यदि हम उसे कुछ न बनावें तो वह कुछ नहीं बनेगा। हम बालक को एक गीली मिट्टी के समान समझते हैं जिसे हम अपनी इच्छानुसार रूप रंग दे सकें। यह हमारा बहुत हानीकारक मिथ्या विश्वास है। बालक के मन का अपने आप को निर्माण करने वाला समझ कर माता पिता अपने मिथ्या आदर्शों को उस पर ठूँसते रहते हैं इस लिए बालक को अपने स्वाभाविक ढंग में विकसित होने नहीं देते। माता मॉण्टेसोरी का कथन है कि समाज ने अपने आत्मकेन्द्रित प्रेम उत्पन्न मिथ्या विश्वास के कारण मनुष्य की जो असली मानसिक गठन है उसे जाना ही नहीं। उन्होंने बालकों को ज्ञात और अज्ञात रूप से स्वभाविक ढंग से विकसित होने ही नहीं दिया इसलिए मनुष्य ने केवल अपना कुरूप ही देखा है।

जैसे बालक के गर्भाशय में होने पर माता का काम उपयोगी वातावरण उपस्थित करना है वैसे ही बालक के जन्म लेने के बाद माता पिता का काम यह है कि उस के लिए उपयोगी मानसिक वातावरण उपस्थित करें। माता पिता बालक के मानसिक विकास की ओर कोई ध्यान नहीं देते रहे और फलस्वरूप बालक को अज्ञातरूप से ऐसा प्रतिकूल वातावरण देते रहे हैं कि जिस में उस के अवगुण उस के मन के इतने आवश्यक अंग बन गए हैं कि मनुष्य मन को जन्मजात पापी ठहराते हैं। कहा जाता है कि एक ऐसी झील है जहां पर कोई

रोशनी की किरण तक नहीं पहुंचती, वहां की मछलियां सब की सब अन्धी हैं। अब यदि सारा विश्व इसी झील से समूहित हुआ हो और यदि दूसरी दुनियां से कोई देखने वाला आवे तो वह यह समझेगा कि मछलियों के लिए अन्धा होना उन का जन्मजात स्वभाविक गुण है परन्तु यह वास्तव में सच न होगा। यह मछलियों का आवश्यक गुण नहीं यह तो वातावरण के दोष का चिन्ह है। इन मछलियों को अन्धकार का प्रतिकूल वातावरण मिला इस लिए वे बिचारी अन्धी हो गई हैं। इसी प्रकार कभी हम ने यह सोचा है कि जिन बालदोषों को हम जन्मजात और स्वभाविक समझते हैं, वह न तो जन्म-जात ही हैं और न स्वभाविक ही। केवल वह हमारे प्रतिकूल वातावरण के प्रकाश हैं। माता मॉण्टेसोरी ने यह अपने स्कूलों में साबित करके दिखाया है कि बालक के स्वभाविक समझे हुए अवगुण अर्थात उन का गदलापन, अपरि-पाटीपन, खान-पीन का लोभ, स्वार्थ, शरारत, लड़ाकापन, उनके अवधान का अस्थाई-पन स्वभाविक नहीं। यह घरेलू और सामाजिक दोषी वातावरण के परिणाम हैं। यदि बालक को उस के आन्तरिक विकास नियम अनुसार वाता-वरण मिले तब ही मनुष्य को पता लग सकता है कि मनुष्य की क्या गठन है। हमें इस लिए आत्मकेन्द्रित प्रेम से रहित हो कर बालक के जीवन का अध्ययन कर के उस की मांग अनुसार वातावरण का प्रबन्ध करना चाहिए। हमें यह अनुभव करने की आवश्यकता है कि बालक की जीवनी शक्ति ही उस के शरीर और मन की रचनात्मक है। हमें दीन हो कर, बालक जो जीवन रचना का अद्भुत कृष्मा दिखा रहा है उस का धार्मिक श्रद्धा के साथ निरीक्षण करना चाहिए। सब शिक्षकों को, चाहे वह माता पिता, अध्यापक या अन्य बाल-पोषण के उत्तरदायी हों, उपरोक्त सत्य को ग्रहण करना चाहिए और इस सत्य की रोशनी में अपने आप को बालक पर ठोसने के स्थान पर उसे स्वतन्त्र वातावरण देना चाहिए जिस में बालक की रचनात्मक शक्ति फल और फूल कर आदर्श रूप प्रकाशित कर सके।

सारांश

माता मॉण्टेसोरी ने बालक के मन के प्रति चार सचाईयां खोजीं और प्रकट की हैं—

१—पहली सचाई यह है कि माता पिता के लिंगी सैलों के युक्त होने पर

नया सैल बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

(क) इस युक्त सैल में भिन्न-भिन्न शारीरिक अंगों को क्रमानुसार बनाने की योग्यता होती है। (ख) इसके अतिरिक्त बालक के मन की गठन को भी यह संयुक्त सैल क्रम अनुसार नियुक्त करता है।

२—इस सच्चाई का शिक्षा के लिए क्या अर्थ है?

(क) माता पिता तथा शिक्षक को समझना चाहिए कि बालक एक गीली मिट्टी नहीं, जिसे वह जैसा चाहें रूप और रंग दे सकें।

(ख) बालक की जीवनी शक्ति का निरादर करके बालक को गीली मिट्टी समझ कर, उस पर अपनी इच्छानुसार आदर्श थोपने का परिणाम यह होता है कि बालक विपथ होकर अवगुणी बन जाता है। यही कारण है कि अवगुणों की इतनी महामारी है कि कई सिद्धान्तदर्शी और धार्मिक नेताओं ने मनुष्य व्यक्तित्व को जन्म से पापी ठहराया है।

(ग) मनुष्य की जीवनी शक्ति कुरूप नहीं परन्तु यह हमारी ना समझी के कारण कुरूप हो जाती है।

(घ) माता पिता तथा शिक्षक का काम एक माली का काम है। माली पौदे बनाता नहीं, उसका काम बीज की जीवनी शक्ति को ऐसा वातावरण देना है कि वह पत्ते, टहनियों, फूल और फलों में विकसित हो। माता पिता तथा शिक्षक के पालने पोसने एवं शिक्षित करने का उद्देश्य बालक को ऐसा वातावरण देना है जिससे उसकी जीवनीशक्ति अपनी गठनानुसार विकसित हो सके।

(ङ) यह सच्चाई माता पिता तथा शिक्षकों को उनके अहं व स्वेच्छाचारिता से मुक्ति का साधन बननी चाहिए।

(च) यह सच्चाई माता पिता तथा शिक्षक को बालक के प्रति सम्मान की वृत्ति विकसित करके उन्हें बालक का सच्चा सहायक बना सकती है।

हाथ धोने का साधन। (पृ० १०५)

(ए. एम. आई. स्वीकृत देहली मॉण्टेसोरी स्कूल, फ़िरोज़शाह रोड)

बूट पालिश का साधन।
(पृ० १६०)

६
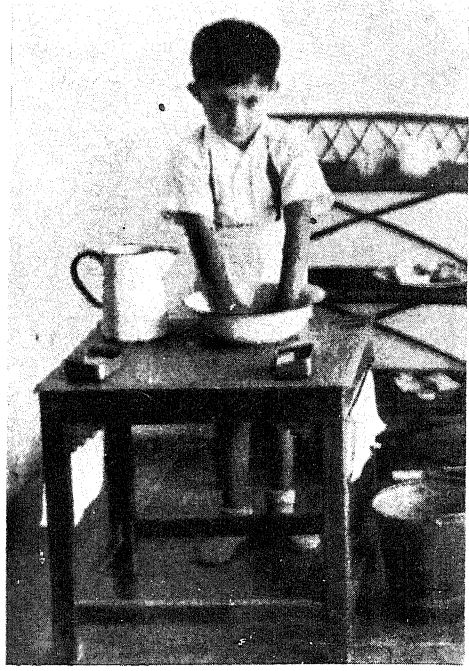
बालक के संवेदन काल

मॉण्टेसोरी ने दूसरा सत्य यह प्रकट किया है कि बालक की रचनात्मक शक्ति अटकल पच्चू काम नहीं करती इसकी विधि है और इस विधि के अनुसार ही बालक का ठीक विकास हो सकता है।

हम जानते हैं कि एक विशेष समय में बालक चलना सीखता है और उससे पहले यदि हम उसे चलाने की कोशिश करें तो हम पूर्ण असफल होंगे। यह नहीं कि बालक की टाँगों में ताकत नहीं उस की टाँगों के बल का अनुभव उस की टाँगें मारने की गति से हो सकता है। उस के पैरों के आगे कोई चीज़ रख दो तो वह उसे काफी ज़ोर से धकेल सकता है। वह चल इस लिए नहीं सकता कि अभी उस में चलना सीखने की आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नहीं हुई। इस आन्तरिक प्रेरणा के जागृत होने पर ही बालक चलना सीखने का इच्छुक हो जाता है और चलना सीख जाता है। इसी प्रकार बालक के बोलने का समय होता है। इस समय से पहले बालक को भाषा सिखाने पर कितना ही ज़ोर क्यों न दिया जावे वह हमारी मूर्खता पर हंस देगा। माताएँ शुरू से ही बालक के साथ बातें करती हैं लेकिन बालक बोलता नहीं केवल हंस देता है। इसलिए नहीं कि बालक को अपने बोलने के अंगों पर काबू नहीं उसका बोलने के अंगो पर प्रभुत्व तो अवश्य है क्योंकि उन्हीं अंगों द्वारा वह माता का स्तन चूसने की कठिन क्रिया कर लेता है और बड़ी सुविधा के साथ, बिना किसी कठिनाई के और पूर्णता के साथ। वह बोल इसलिए नहीं सकता कि उस में बोलने की आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नहीं हुई। जब आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न होती है तो उस के लिए दूसरों का बोलना एक जीवित महत्व रखता है। वह बड़े ध्यान से शब्दों को सुनता है और उन्हें उच्चारण करने का अत्यन्त प्रयत्न करता है। जब बालक की यह आन्तरिक भावना तीव्र होती है तो वह बड़ी जल्दी अपनी भाषा सीखने में विकास करता है परन्तु यह भाव-शक्ति सदा नहीं रहती वह केवल कुछ ही समय के लिए रहती है। इस समय के बाद हमारे भाषा सीखने की योग्यता बहुत कम हो जाती है। हम सब जानते हैं कि बड़े हो कर हमें किसी नई भाषा सीखने में कितनी कठिनाई होती

है-और तब भी बाल-जीवन में सीखी हुई भाषा की अपेक्षा प्रौढ़ आयु में नई सीखी हुई भाषा में हमारा प्रभुत्व कितना कम होता है। वह उच्चारण कहां? वह सुविधा कहां? वह अनुभूति कहां? वह प्रफुल्लता कहां? वह निर्दिष्ट प्रयोग कहां? वह मधुरता कहां? वह पूर्णता कहां?

माता मॉण्टेसोरी ऐसी आन्तरिक प्रेरणाओं को विशेष २ अनुभव, समय या संवेदन काल का नाम देती हैं। इन संवेदन कालों के तीन गुण हैं :--

(क) प्रत्येक संवेदन काल विश्वव्यापी है अर्थात् यह सब बालकों में होता है। उदाहरणार्थ सब साधारण बालकों में ऐसा समय आता है कि जब वह चलना या बोलना सीखते हैं।

(ख) प्रत्येक संवेदनकाल का उद्देश्य विशेष गुण पाना या ज्ञान पाना है। जिस प्रकार हमारी इन्द्रियों की विशेषता यह है कि प्रत्येक इन्द्री विशेष ज्ञान देती है उसी प्रकार हमारे प्रत्येक संवेदन काल भी विशेष ज्ञानोपार्जन करते हैं। यह क्षणिक संवेदन काल हमारी आन्तरिक ज्योति है जो हमारे जीवन की यात्रा को ज्योतिर्मान करते हैं इन के द्वारा ही हम इस जगत में अपना पथ निकालते हैं। यदि वह संवेदन काल हमारे पथ-दर्शक न हों तो हमारे लिए वातावरण के साथ मेल में आकर उस के साथ बुद्धिमान व्यवहार से जुड़ना असम्भव हो जावे। बालकों के नेता माता पिता नहीं परन्तु बालक की आन्तरिक अनुभव शक्तियां हैं। माता पिता आत्म-केन्द्रित प्रेम के कारण यह समझते हैं कि बालक में कोई आन्तरिक पथ-दर्शक ज्योति नहीं। उदाहरणार्थ बालक की भाषा शक्ति के जागृत होने से पहले उस के लिए शब्द दुनियां एक गोरख-धंधा है। इस समय में उस के लिए शब्दों की कोई भिन्नता या उन में कोई भेद नहीं वे तो केवल अर्थरहित आवाज है। परन्तु ज्यों ही उस की भाषा उपार्जन की आन्तरिक शक्ति जाग्रत होती है त्यों ही उस को आन्तरिक ज्योति इस भाषा की दुनियाँ के गोरख-धन्धे को सुलझाने लगती है। बालक के कान अब शब्दों के अन्तर को अनुभव करने लगते हैं। और धीरे २ भाषा की सारी दुनियां के मालिक हो जाते हैं। इसी प्रकार शब्दों के उच्चारण की सुविधा बढ़ती जाती है। यहां तक की बालक उसे अपनी इच्छानुसार प्रयोग करता है।

(ग) इन संवेदन कालोंका तीसरा गुण यह है कि यह नियत समय के लिए

रहते हैं। ये प्राकृतिक शक्तियों की भांति सारे जीवन के साथी नहीं। उदाहरणार्थ हमारी भूख और काम शक्ति प्राकृतिक शक्तियां हैं। ये जीवन भर हमारे साथ रहती हैं। परन्तु संवेदन काल क्षणिक है। जिस समय में वे जागृत हों उस समय में यदि उन्हें उपयोगी वातावरण न मिले तो उस के बाद उन के द्वारा जो कुछ ज्ञानोपार्जन या भाव विकास होना था वह रह जाता है। हम ने भाषा संवेदन काल दृष्टांत द्वारा प्रमाणित किया है कि बड़े हो कर भाषा सीखना इस लिये कठिन है और उस पर पूर्णतः ठीक प्रभुता पाना इस लिए असम्भव है कि भाषा सीखने की आन्तरिक अनुभव शक्ति विशेष समय तक ही प्रबल रहती है।

यह संवेदनकाल का तत्व बाल विकास रक्षकों के लिये क्या-क्या हितकर शिक्षा देता है ?

(१) इन आन्तरिक अनुभव शक्तियों के गुणों का जानना सब शिक्षकों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि यह ज्ञान हमें बालक के विकास में पथ प्रदर्शक है। आन्तरिक अनुभव शक्तियों के गुणों से स्पष्ट है कि बालक ने स्वयं ही अपनी शिक्षा पानी है उस की आन्तरिक अनुभव शक्ति ही हमारी शिक्षा प्रणाली की पथ ज्योति होनी चाहिये। शिक्षकों का उद्देश्य, चाहे वह माता पिता हों चाहे अध्यापक, बालक की क्षणिक अनुभव शक्तियों का ज्ञान पाना है। माता मॉण्टेसोरी का विचार है कि "अनुभव शक्तियां जो कि मनुष्य जीवन रचती हैं उन की खोज से मनुष्य-मात्र के लिये सब से हितकारी विज्ञान प्रमाणित होगा।"

(२) इन अनुभव शक्तियों के गुणों से यह भी प्रमाणित है कि शिक्षा का उद्देश्य और विधि केवल बालक के लिए उपयोगी वातावरण उपस्थित करना है। हम जानते हैं कि किस प्रकार भाषा सीखने में बालक अपना अध्यापक है। वह बिना किसी सिखाने के, बिना सज़ा के डर से, बिना पारितोषिक के लोभ से, अपनी जीवन रचना का साधन करता है। और इस में अत्यन्त सुख और शांति का अनुभव करता है। किसी शिक्षा के उपयोगी होने की यही कसौटी है कि वह कहां तक बालक को स्वयं शिक्षक बनाती है। कहां तक वह बालक के हस्तक्षेप से रहित है ? कहां तक बालक की स्वभाविक एकागृचित्तता को आकृष्ट करती है ? कहां तक बालक सीखने की खातिर सीखता है ? शिक्षा की विधि और विषय बालक

की अनुभव शक्तियों के साथ सम्बन्धित होनी चाहियें। ताकि वह जीवन विकास के साधन और सामग्रीयां बन सकें। शिक्षा की एक ही सच्ची विधि है और वह यह है कि बालक की प्रत्येक संवेदन काल की उपस्थिति पर उसे उपयोगी वातावरण दिया जावे।

बालक की क्या २ अनुभव शक्तियां हैं?

इन की अभी कोई पूर्ण खोज नहीं हुई परन्तु माता मॉण्टेसोरी ने कुछ ऐसी अनुभव शक्तियों की खोजना की है और वह यह है:—

(१) बाह्य वातावरण के सम्बन्ध में परिपाटी का संवेदन काल—बालक के पहले कुछ महीनों के जीवन की अनुभव शक्ति परिपाटी के सम्बन्ध में है। वही वातावरण परिपाटी का है जिस में प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो। इस आयु में यह अनुभव शक्ति अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा ही बालक वातावरण पर अपना काबू पा सकता है। वातावरण का परिपाटीपन उसके लिये एक भूमि है जिस के ऊपर चलना आवश्यक है। अगर उसे अपने जीवन में आगे बढ़ना हो तो यह उस के लिये वैसे ही है जैसे मछली के लिये पानी। जब मछली को पानी से निकाल दिया जावे तो वह ऐसे तड़पती है जैसे उस के लिये मृत्यु का समय आ गया है। हम मछली के ऐसे तड़पने को नहीं समझ सकते। यदि मछली हमारे जैसे रंग रूप की होती तो हम उस के तड़पने को बेहूदा ज़िद कहते क्योंकि हमें ज़मीन पर रहने में कोई दिक्कत नहीं इसलिए यह कितनी मूर्खता है कि हम यह समझें कि मछली और हमारे लिये वातावरण की एक ही आवश्यकताएँ हैं। और मछली के वातावरण से भिन्न मांग को हम बेहूदा ज़िद कहें। इसी प्रकार प्रौढ़ जीवन और बाल जीवन की मांगें अलग अलग हैं। बाल जीवन प्रौढ़ जीबन का लघु चित्र नहीं परन्तु पूर्णतः भिन्न जाति का है। वातावरण की ख़राबी हम प्रौढ़ों के लिये कोई दुःख की बात नहीं क्योंकि हम अपने वातावरण को समझते हैं और इसलिये वस्तुओं के हेर फेर के होने पर भी हम अपना रास्ता चीर सकते हैं और उपयोगी व्यवहार कर सकते हैं। बालक को अभी वातावरण की समझ-बूझ नहीं। वातावरण में उचित व्यवहार के लिये आवश्यक है कि हमें वस्तुओं के परस्पर सम्बन्ध अर्थात उन की निकटता और दूरी का बोध हो। हम किसी वाता-

वरण पर तब ही मानसिक रूप से प्रभुता पा लेते हैं जब हम उस की बाबत इतना जानते हों कि आंखें बन्द कर के उस में चल फिर सकें और जो चाहे उठा सकें। बालक वातावरण के साथ मेल में आना चाहता है। इस का अर्थ यह है कि वह चीज़ों की परस्पर निकटता और दूरी को समझना चाहता है। यदि वातावरण में परिपाटी हो तो बालक अत्यन्त सुख का अनुभव करता है क्योंकि उस के लिये ऐसे वातावरण पर प्रभुता पाना बहुत सहज हो सकता है। परिपाटीपूर्ण विकास वातावरण बालक के लिये सुविधा या फैशन की बात नहीं परन्तु जीवन विकास की परिस्थिति है। बालक की आत्मा उथल पुथल वातावरण में चिल्ला उठती है और इस चिल्लाने का अर्थ यह होता है कि वह कह रहा है कि मैं जीवित रह ही नहीं सकता जब तक मेरे इर्द गिर्द परिपाटीपूर्ण वातावरण न हो। क्या हमें अनुभव नहीं कि बालक कई बार जोर २ से चिल्लाते हैं जिसका हमें कोई कारण नहीं मिलता। माता उसे दूध के लिये स्तन दे कर या खड़का करके या उसे मिठाई इत्यादि दे कर चुप कराती है और यदि वह चुप न हो तो उस के रोने को ज़िद समझ कर कई बार उसे पीट भी देती है। ऐसे पीटने से बालक की अनुभव शक्ति दमन हो जाती है। हमारा ऐसा व्यवहार बालक की आत्मा में घाव कर देता है और इस घाव का पस असामाजिक व्यवहार बन कर निकलता रहता है।

माता मॉण्टेसोरी ने सच्ची घटनाओं द्वारा दिखाया है कि किस प्रकार बालक परिपाटी हीन वातावरण मिलने पर बिन-पानी मछली की भांति तड़पता है। एक बालक का दृष्टांत इस प्रकार है:—वह जब कुछ महीने ही का था वह इस प्रकार लिटाया जाता था कि वह सारे कमरे का वातावरण देख सके। उस के कमरे में बहुत कुछ सामान और सुन्दर फूल होते थे। प्रत्येक मेज़ पर एक पौधा रखा हुआ था। एक दिन एक स्त्री उन के घर आई और उस ने अपनी छतरी मेज़ पर रख दी। बालक यह देख कर उत्तेजित हो गया और रोने लग गया। घर के सब बड़ों ने यह सोचा कि बच्चे को छतरी चाहिये इस लिये उसे छतरी दे दी। बालक ने छतरी लेने की जगह उसे उठा कर फेंक दिया। छतरी फिर मेज़ पर रख दी गई और नर्स ने उसे उठा कर मेज पर छतरी के पास बिठा दिया परन्तु बालक ने और भी रोना और चिल्लाना शुरू कर दिया। नासमझ माता पिता बालक के इस व्यवहार को व्यर्थ ज़िद समझते, जो बच्चों

का दस्तूर ही है। परन्तु बच्चे की माता मॉण्टेसोरी-विधि शिक्षित थी। उस ने छतरी उठा कर दूसरे कमरे में रख दी। तुरन्त ही बालक चुप हो गया उस के रोने का कारण यह था कि छतरी गल्त जगह पर रखी गई थी और यह वस्तुओं की परिपाटी में हस्तक्षेप कर के उस की मानसिक स्थिरता या वातावरण प्रभुता में गड़बड़ी कर रही थी ।

माता मॉण्टेसोरी ने एक और दृष्टांत इस प्रकार दिया है। एक बार बच्चों ने उन्हें अपने साथ आंख मिचौनी खेलने के लिये कहा । माता मॉण्टेसोरी ने जब मान लिया तो वह सब भाग गये जैसे उन्होंने पीछे देखा ही नहीं कि वह कहां छिपी थीं । माता मॉण्टेसोरी किवाड़ के स्थान पर अलमारी के पीछे छुप गईं । बालक वापिस आ कर उन्हें किवाड़ के पीछे ढूंढने लगे। माता मॉण्टेसोरी कुछ देर पीछे रहीं और फिर बाहिर आ गईं। बालकों ने अपनी निराशा प्रकट की और गुस्से से कहा कि आप हमारे साथ क्यों नहीं ठीक खेल रहीं ? उन बालकों की आशा ही नहीं परन्तु विश्वास यह था कि उन्हें किवाड़ के पीछे छुपना चाहिये था और उन्होंने अलमारी के पीछे छुप कर खेल का नियम तोड़ा है। दो तीन वर्ष के बालकों को खेलों का सुख इस में है कि उस चीज को वहीं ढूंढ पायें जो जहां उन्होंने रखी थी या देखी थी। उन के मानसिक जीवन की मांग यह है कि सुस्पष्ट और अदृश्य दुनियां दोनों में परिपाटी हो क्योंकि ऐसे वातावरण में ही वह अपनी स्थायी मानसिक दुनियाँ बना सकते हैं।

(२) आन्तरिक परिपाटी संवेदन काल—जैसे बालक अपने वातावरण में परिपाटी चाहता है वैसे ही वह अपने शारीरिक अंगों, उन की गति, और स्थिति में भी परिपाटी चाहता है। यदि उस परिपाटी को उलट-पुलट कर दिया जावे तो बालक अत्यन्त दुःख अनुभव करता है और हमें पीटने तक को आता है । एक बार एक बालक की आया छुट्टी पर गई और एक दूसरी आया को अपने स्थान पर छोड़ गई। यह नई आया जब बालक को नहलाने जाती तो आफ़त आ जाती। वह बालक खूब चिल्लाता और आया के हाथों से निकल २ जाता। यद्यपि आया बालक के नहलाने की तैयारी खूब अच्छी तरह से करती थी । जब पुरानी आया वापिस लौटी तो बालक बड़े मजे से उस से नहा लेता। इन दोनों आयाओं ने अपने व्यवहार की परीक्षा की और इस से ज्ञात हुआ कि पुरानी आया

जहां बालक का सिर दांयें हाथ में और पांव बायें हाथ में पकड़ कर निहलाती थी नई आया इस के बिल्कुल विपरीत बांए हाथ में उस का सिर और दांए हाथ में उस के पांव पकड़ती थी इस लिए बालक को ऐसे अनुभव होता था कि उस का सिर वहां रखा जा रहा है जहां उस के पांव होने चाहियें। वह ऐसे अनुभव कर रहा था जैसे कोई मनुष्य पैर फिसलने पर अपने आप को पाता है। अब बालक का ऐसी सूरत में चीखना चिल्लाना और निकल २ भागना साधारणतः शरारत और दिक करना कहलाता है। हम यह सोचने की तकलीफ नहीं करते कि बालक के शरारतीपन और दिक्क करने की गतियां क्योंकर होती हैं? आत्म-केन्द्रित प्रेमी हो कर हम यह समझते हैं कि जो वस्तु हमें दुःख देने वाली नहीं वह बालक के लिये क्यों दुःख उत्पादक होनी चाहिये। पुनः हम अपने व्यवहार को बालक के लिये पूर्ण कसौटी समझते हैं और इसलिए बालक को ही उस की शरारत और दिक्क करने के लिये दोषी ठहराते हैं।

(३) बालक में छोटी-छोटी महीन और अदृश्य वस्तुओं के देखने और जानने का संवेदन काल—इस सत्य की पुष्टि में माता मॉण्टेसोरी ने अनेक घटनाएँ दी हैं, उनमें से एक यह है—बालक पहले वर्ष में तो चमकीली वस्तुओं या रंगों की ओर आकृष्ट होता है परन्तु दूसरे वर्ष के आरम्भ से ही वह नन्हीं २ वस्तुओं को जिनका हम निरादर करते हैं बड़े चाव और उत्साह के साथ देखता है। एक दिन एक स्त्रियों की सभा गोल कमरे में बैठ कर बालकों के लिए उपयोगी पुस्तकों पर वाद-विवाद कर रही थी। एक माता ने कहा कि देखो यह पुस्तक कितनी अनुपयोगी है, इसकी तस्वीरें कितनी बेहूदा हैं। इस किताब का नाम 'नन्हा काला सैम्बो' था। सैम्बो एक हब्शी लड़का है। उसके जन्मदिन पर उसके बाप ने उसे छतरी, जूते, पतलून, जुराबें इत्यादि दिये। सैम्बो यह कपड़े दिखाने को घर से बाहर चला गया। रास्ते में उसे बहुत से जंगली पशु मिले, जिन्होंने उसे डराया, उनको राजी करने के लिए उसने अपना एक-एक करके कपड़ा देना शुरू किया और यहाँ तक कि घर रोता हुआ नंगा आया परन्तु उसके माता पिता ने उसे माफ़ कर दिया और सबने खुशी-खुशी खाना खाया जैसा कि तस्वीर में दिखाया है। यह किताब सभा में उपस्थित नारियों ने एक एक करके देखी। आतिथी सेवक का एक छोटा बेटा वहीं खेल रहा था उसने जोर से कहा कि नहीं सैम्बो

रो रहा है और उसने छोटी सी तस्वीर जो किताब की जिल्द के पीछे थी उसकी ओर ध्यान फेरा। सब हैरान हो गये क्योंकि किसी ने भी इस छोटी तस्वीर की ओर ध्यान ही नहीं दिया था। बालक का इस छोटी तस्वीर की ओर ध्यान फेरने का उद्देश्य यह था कि वह माता का यह कथन कि सबने मिलकर खूब खुशी से खाना खाया ग़लत था। सैम्बो विचारा तो रो ही रहा था।

बालक में छोटी-छोटी अदृश्य वस्तुओं के जानने का प्रेम उसे वातावरण को समझने और मेल में आने के लिए आवश्यक है। इससे बालक को अपने वातावरण से पूर्ण परिचय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। हम बालक की इन छोटी-छोटी चीजों पर ध्यान के कारण उन्हें तुच्छ समझते हैं कि जिस मूल्यवान वस्तु को देखना है उसे तो देखते नहीं और सामान्य वस्तुओं पर इतना ध्यान देते हैं। शायद बालक हमारे सम्बन्ध में भी ऐसा ही विचार रखता है कि इन बड़ों में यथार्थता का बोध है ही नहीं और वह रोचक वस्तुओं की ओर उदासीन तथा अज्ञात ही रहते हैं। यही कारण है कि प्रौढ़ और बालक में परस्पर ग़लतफहमी रहती है। इसी ग़लतफहमी के कीड़े ही उनके परस्पर मेल और सम्बन्ध को खा रहे हैं।

सारांश

क—बालक की निर्माणकारी शक्ति बालक में भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न प्रेरणाओं द्वारा बालकको कार्य व्यस्त करती है। ऐसी प्रेरणाओं को माता मॉण्टेसोरी सम्वेदन काल या विशेष अनुभव समय का नाम देती हैं।

इन सम्वेदन कालों के तीन गुण हैं:—

(१) प्रत्येक सम्वेदनकाल सब बालकों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ सब साधारण बालकों में ऐसा समय आता है जब वह चलने या बोलने की प्रेरणा अनुभव करके ऐसी सम्बन्धित क्रियाएँ करते हैं।

(२) प्रत्येक सम्वेदन काल का उद्देश्य विशेष गुण या ज्ञान पाना है। उदाहरणार्थ बालक में बोलने का सम्वेदन काल उसको भाषा सम्बन्धी उच्चारण और अर्थ के गृहण करने के संग्राम में लगा देता है।

(३) प्रत्येक सम्वेदन काल की प्रेरणा नियत समय तक ही तीव्र रहती

है। बोलना सीखने की प्रेरणा का सम्वेदन काल सदा नहीं रहता। प्रौढ़ के लिए नई बोली सीखना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

ख—माता मॉण्टेसोरी ने कुछ सम्वेदन कालों की खोज की है:—

(१) बाह्य वातावरण के सम्बन्ध में परिपाटी का संवेदनकाल—इस सम्वेदनकाल में बालक बाह्य वातावरण के प्रति अत्यन्त भावुक होता है। उसके मन की मांग यह है कि बाह्य वातावतरण की परिपाटी वही रहे—छतरी और माता मॉण्टेसोरी के खेल का दृष्टान्त इस सत्य के उदाहरण हैं।

(२) आन्तरिक परिपाटी सम्वेदन काल—बालक अपने अंगों की गति और स्थिति की परिपाटी के प्रति बहुत भावुक होता है। उसमें हेर-फेर उसे बहुत दुःखी करता है। बालक का पलंग बदलने व आया बदलने वाले दृष्टान्त इस सम्वेदन काल के सूचक हैं।

(३) बालक में छोटी और अदृश्य वस्तुओं के देखने का काल—इस संवेदन काल में बालक की प्रेरणा छोटी छोटी महीन और अदृश्य वस्तुओं को देखने की होती है। वह उनके प्रति बहुत भावुक होता है।

ग—इन सम्वेदन कालों का बालक की शिक्षा में क्या स्थान है?

माता मॉण्टेसोरी के अनुसार सम्वेदन काल ही शिक्षा के मुख्य आधार हैं। इनकी खोज शिक्षा का मुख्य आदर्श है। कारण यह है कि—

(१) सम्वेदन काल में ही बालक सहज और पूर्ण रूप से शिक्षित हो सकता है।

(२) जब सम्वेदन काल गुज़र जावे तो शिक्षा अत्यन्त कठिन हो जाती है।

(३) सम्वेदन काल ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि बालक के लिए कौन सी सामग्री व साधन उपयोगी हैं। वह सामग्री व साधन अनुपयोगी हैं जो बालक के सम्वेदन काल का निरादर करते हैं। उदाहरणार्थ—चलने के सम्वेदन काल से पहले बालक को रेहड़ा देना और उसे उस पर ज़बर्दस्ती खड़े करना अनुपयोगी सामग्री व साधन देना है।

(४) सम्वेदन कालोंके निरादर द्वारा शिक्षक केवल बालक को शिक्षित और विकसित करने के अवसर को खो बैठता है। वह उसे असामाजिक व दुःखी व्यक्ति बना देता है।

७

प्रौढ़ और बालक की क्रियाओं में मूल अन्तर

साधारण विश्वास यह है कि यदि मनुष्य का पेट न होता तो वह बिल्कुल काम न करता। जीवित रहने की मांगें ही हमारे न चाहने पर भी हमें काम में धकेलती हैं और हम अपनी साधारण क्रियाओं से छुट्टी पाने में सुख और क्रियाओं के करने में थकावट अनुभव करते हैं। हमारे लिए साधारणतः कार्य बोझा होता है जिसे हम हर समय उतार फैंकना चाहते हैं। ज़रा अधिक कम पड़ने पर हमें जान के लाले पड़ जाते हैं और हम उस घड़ी की प्रतीक्षा करते हैं जब कि हमें उससे छुटकारा मिल सके। हम पड़े रहने को ही आदर्श समझते हैं। यह क्यों ? माता मॉण्टेसोरी का विचार है कि क्योंकि हमारा जीवन विपथ हो चुका है अर्थात उसमें अधिकार प्राप्ति की इच्छा, धन और मोह के रोग लग गए हैं, इसलिए हमारा काम हमें कोई आन्तरिक सुख नहीं देता। हमारी काम-आवृत्ति वैसे ही है जैसे रोगी की खाने से होती है। दोनों ही अस्वस्थ अवस्था के चिन्ह हैं। मनुष्य के लिए क्रिया करना उसी तरह स्वाभाविक है जिस तरह स्वस्थजन के लिए भूख अनुभव करना। इसका प्रमाण प्रतिभाशाली महापुरुषों तथा बालकों के जीवन में मिलता है। हम जानते हैं कि महापुरुष दिन-रात कार्य में व्यस्त रहते हैं और वह तब भी अपने जीवन कार्य करने में सदा खुश रहते हैं। कारलाईल ने महापुरुष की परिभाषा दी है कि वह व्यक्ति महापुरुष है जिसमें कार्य करने की असीमित योग्यता हो। महापुरुषों में कार्य करने की असीमित शक्ति इसलिए हैं कि उनका कार्य उनके जीवन विकास के साथ समरूप है। उनका कार्य उनके जीवन को ज्योर्तिमान करता है और उनकी जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। महापुरुष अपनी जाति की प्राकृतिक कार्य शक्ति के आदर्श चिन्ह हैं।

महापुरुष की भाँति बालक भी अथक और लगातार कार्य करने वाला व्यक्ति है। बालक अपनी क्रियाओं पर, जिसे हम आत्मकेन्द्रित प्रेम के कारण खेल कहते हैं सारा सारा दिन लगा रहता है और किसी बाह्य प्रलोभन के कारण

नहीं, किसी पेट पूजा के लिए नहीं, अपितु अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए। बालक की क्रियाएं जीवन विकास की क्रियाएं हैं। बालक उनके करने में केवल संकोच नहीं करता बल्कि उत्सुक होता है। कार्य के द्वारा वह उन्नत और विकसित होता है और यही कारण है कि कार्य उसकी शक्तियों को बढ़ाता है। उसके लिए तो कार्य और मृत्यु में चुनाव है और वह स्वाभाविक कार्य ही चुनता है क्योंकि कार्य ही जीवन है।

बालक की क्रिया के विशेष यन्त्र उसके हाथ हैं। यह मनुष्य जाति के लिये विशेष यन्त्र हैं। पशु हमारी तरह चल फिर सकते हैं परन्तु वह हमारी तरह वातावरण पर प्रभुत्व नहीं पा सकते। इसका एक कारण यह है कि उनके पास हाथों जैसे यन्त्र नहीं, जिनके द्वारा वह अपने आदर्श के अनुसार वातावरण को ढाल सकें।

मनुष्य के हाथ उसके मन के यन्त्र हैं, इसका पता साधारण भाषा और व्यवहार से ही लग सकता है। यदि प्रेम प्रकट न करना हो तो हम आपस में हाथ मिलाते हैं या हम एक दूसरे को हाथ जोड़ते हैं। एक दूसरे से प्रण करना हो तो भी हाथ मिलाते हैं, 'कर बन्धन' को 'हृदय का बन्धन' समझते हैं। अपनी लाचारी ज़ाहिर करनी हो तो हम कहते हैं 'मैं तो निहत्था हूँ'। किसी काम को छोड़ दिया हो तो हम कहते हैं कि इससे तो हमने 'हाथ धो लिए हैं' अर्थात् हम हाथों को अपने मन का प्रतिनिधि समझते हैं। मनुष्य की सभ्यता उस समय से समझी जाती है जब से मनुष्य ने हथियार बनाये हैं, मनुष्य मन की सभ्यता उसके हाथों द्वारा वातावरण को अपनी मांगों अनुसार ढालने में समझी है। हाथ की क्रिया कितनी विचित्र, कितनी पवित्र, और विकास के द्वार खोलने वाला महत्व रखती है।

हाथ की क्रिया बालक के मनविकास के लिए क्या अर्थ रखती है। मन के निर्माण और प्रफुल्लता के लिए हम इन्द्रियों की क्रियाओं के महत्व को स्वीकार करते हैं। यदि आंखों से देखने की गति न हो तो हम वातावरण के रंग, रूप और उसकी सुन्दरता के सम्बन्ध में नहीं आ सकते और सम्बन्ध से वंचित रह कर उन्नत नहीं हो सकते। यदि कोई साधारण बालक अन्धा, बहरा या गूंगा हो तो उसके मनविकास में असाधारण कठिनाइयां उत्पन्न

हो जाती हैं। दृष्टि और कान मानसिक बोध के द्वार हैं। अन्धे और गूंगे का दुख शारीरिक नहीं अपितु मानसिक है। यह उसके मन के विकास में खाईयां हैं। यह ऐसी दीवारें हैं जो उसके लिए दुनिया बन्द कर देती हैं। कोई भी होश रखने वाला मनुष्य यह नहीं कह सकता कि यदि मानसिक विकास करना हो तो बालकों को अन्धा और बहरा कर देना चाहिए। कारण यह है कि आंखों और कानों का अभाव वातावरण के उन भागों से हमें वंचित रखता है जो हमारे विकास के बाह्य यन्त्र बन सकते हैं।

जहां हम बड़ी सुविधा से यह स्वीकार करने को तैयार हैं कि इन्द्रियों की क्रियाएं हमारे मन विकास के लिए आवश्यक और अनिवार्य हैं वहां हम यह अनुभव नहीं करते कि हाथ की क्रियाएं भी मन विकास के लिए आवश्यक हैं। सच तो यह है कि अंगों की क्रियाओं में हाथों की क्रिया मन के लिए अद्वितीय स्थान रखती है। पशु की पौदों पर विशेषता उसके चलने फिरने के कारण है। मनुष्य की पशु पर विशेषता उसके हाथों की क्रिया पर है। जब पशु ने अपनी दो टांगों को हाथ बनाया तो उसकी आत्मा पशु जीवनी शक्ति से मनुष्य आत्मा बन गयी। मनुष्य के खड़े होने और इस प्रकार हाथ प्रयोग करने से ही नई आत्मा का विकास हुआ।

हम बालक के देखने और सुनने में कोई हस्तक्षेप नहीं करते क्योंकि उस का देखना और सुनना हमारे लोभ माया में विघ्न नहीं डालता। परन्तु ज्यों ही बालक अपने नन्हें २ हाथ चीज़ों को पकड़ने और उठाने के लिए बढ़ाता है त्यों ही हमारा और उसका युद्ध शुरू होता है। हम उसे हर समय चीज़ों को हाथ लगाने से रोकते रहते हैं, और वह हर समय हाथ लगाने का यत्न करता रहता है। यदि बालक देखना चाहता हो और हम उसे आंखों से अन्धा कर दें तो कितनी कठोरता होगी? हम बालक को वस्तुओं को छूने से हर समय रोक कर, उसके हाथ काट रहे हैं और आत्मिक रूप से अन्धा, गूंगा और बहरा कर रहे हैं। नहीं! इससे भी कहीं बढ़कर उसे तो मृत्यु दण्ड दे रहे हैं क्योंकि उसके हाथ की गति तो उसकी आत्मा का मूल यन्त्र है जब हम उसे हाथ काटने की धमकी देते हैं तो हम उसे आत्मघात की धम्की देते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि हम अपने जिगर के टुकड़ों के स्वयं ही टुकड़े टुकड़े कर रहे हैं? प्रेम का दम भर कर कसाईयों से भी बढ़कर बाल घातक का रूप धारण कर रहे हैं।

यद्यपि क्रियाएं हमारी उन्नति और विकस की नींव हैं तथापि बालक की क्रियाओं और साधारण प्रौढ़ की क्रियाओं में बहुत अन्तर है। प्रौढ़ की क्रियाएँ बाह्य उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। प्रौढ़ की क्रियाएँ धनोपार्जन की क्रियाएं हैं, पद और नाम उपार्जन की क्रियाएं हैं। प्रौढ़ अपने इन बाह्य उद्देश्यों में इतना आसक्त है कि वह अपने जीवन के विकास को भी त्याग देता है, अपने स्वास्थ्य को भी त्याग देता है। हम सब जानते हैं कि पद और धन के लोभी जन किस तरह अपनी आत्मा का घात करते हैं और स्वास्थ्य को बरबाद करते हैं। बालक बाह्य वस्तुओं से बँधा हुआ नहीं वह अपने जीवन विकास के साथ बन्धा हुआ है। वह वस्तुओं का मोही नहीं जीवन का मोही है। वह अपने आपको पूर्ण करना चाहता है।

बालक एकएक क्रिया को अगणित बार करता है। केवल उस क्रिया की पूर्णता के लिए ही नहीं परन्तु अपनी आन्तरिक पूर्णता के लिए भी। जब वह एक शब्द उच्चारण करता है और ठीक २ उच्चारण कर लेता है तो भी उसे दोहराने में प्रसन्नता अनुभव होती है। हम प्रौढ़ों की क्रियाएं बाह्य आदर्शों के लिए होती हैं इसलिए हम उसमें कम से कम शक्ति खर्च करना चाहते हैं मनुष्य के अविष्कार प्रौढ़ के इस स्वभाव के परिणाम हैं। प्रौढ़ अपनी कम से कम शक्ति खर्च करना चाहता है और अधिक से अधिक चीज़ें उपार्जन करना चाहता है। इसके विपरीत बालक एकएक क्रिया पर अपनी अधिक से अधिक शक्ति उडेलता हैं क्योंकि उसके लिए क्रिया और विषय की स्वयं कोई क़ीमत नहीं उसे तो अपनी पूर्णतः से वास्ता है। बालक और वातावरण का यह सम्बन्ध हमारे लिए अनुकरणीय है बालक अपने वातावरण को अपने विकास के लिए प्रयोग करता है और उनके साथ मोह की पराधीनता में नहीं फंसता। यही हम बड़ों की मानसिक अवस्था होनी चाहिए।

हमने बालक और प्रौढ़ की गतियों के दो मूल भेदों पर चिन्तन किया है अर्थात :—

(१) प्रौढ़ की गतियों का उद्देश्य बाह्य है और बालक की गतियों का उद्देश्य आन्तरिक है इस भेद का वर्णन हमने विस्तारपूर्वक पहले अध्याय में किया है।

(२) प्रौढ़ की क्रिया पर न्यूनतम प्रयत्न का नियम लागू है परन्तु बालक पर अधिक प्रयत्न का नियम लागू है।

(३) प्रौढ़ और बालक में तीसरा भेद यह है कि जहां प्रौढ़ दूसरे की क्रिया का फल छीन सकता है वहां बालक दूसरे की क्रिया का फल नहीं ले सकता। माता पिता के परिश्रम द्वारा कमाये हुए धन का फल बेटा ले सकता है और लेता है। इसी प्रकार धनपति लोग मज़दूरों के पसीने की कमाई को छीन कर स्वयं मज़ा ले सकते हैं, परन्तु बालक के लिए यह निकृष्ट मार्ग बन्द है। बालक स्वयं अपनी क्रियाओं द्वारा ही अपना आन्तरिक विकास कर सकता है। यदि वह बोलने का लगातार परिश्रम न करे तो वह बोलना नहीं सीख सकता। वह दूसरे के बोलने के परिश्रम को अपहरण नहीं कर सकता। इसी प्रकार वह चलने की क्रिया के लिए यदि अनवरत संग्राम छोड़ दे तो वह चलना नहीं सीख सकता। दूसरे के चलना सीखने की मेहनत का अपहरण वह नहीं कर सकता। अपहरण का शाप प्रौढ़ जाति पर ही है। बाल जाति में तो पूर्ण समानता और न्याय है। इसमें कोई धनपति नहीं। प्रत्येक व्यक्ति एक इमानदार मज़दूर है, जो अपने संग्राम का ही फल भोगता है। कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की मेहनत और संग्राम का अपहरण नहीं कर सकता।

(४) प्रौढ़ और बालक की क्रियाओं का चौथा अन्तर यह है कि बालक की क्रिया का पथ सरल नहीं। यदि उसे २० वर्ष का पुरुष बनना है तो उसे पूर्ण २० वर्ष लगेंगे। उसके स्थान पर दूसरा कोई नहीं बढ़ सकता। बालपन का गुण यह है कि उस की क्रियाएं प्रकृति नियुक्त कार्यक्रम के अनुसार उन्नत और विकसित होती हैं। इस कार्यक्रम का कोई सरल पथ नहीं हो सकता प्रकृति नियुक्त कार्यक्रम संवेदन-काल में अभिव्यक्त होता है। हम इन अनुभवों को संवेदन काल में अदल-बदल नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ यह नहीं कर सकते कि पहले उसे चलना सिखावें और फिर सरकना। बालक की गतियां उस की अनुभव शक्ति से नियमबद्ध हैं। यदि बालक इस कार्यक्रम का निरादर करे तो वह अविकसित रह जावेगा या विपथगामी हो जावेगा। बाह्य आदेशों में सरल पथ हो सकते हैं। जीवन पथ के कोई सरल पथ नहीं।

बालक और प्रौढ़ की क्रियाओं के यह चार भेद माता पिता, तथा शिक्षकों

और सारे प्रौढ़ समाज को मन्त्र की भांति जपने चाहिए । इन सत्यों की ज्योति में हमें बालक के सम्बन्ध में, अपने व्यवहार में क्रान्ति लानी चाहिए। ऐसा करने पर ही बालक के सच्चे माता पिता तथा शिक्षक बन सकते हैं। और तबही मनुष्य-मात्र अपने आदर्शों को सफल देख सकता है। यदि वह बालक और अपनी क्रियाओं के भेद से अन्धे रहें तो हमारी यह अन्धता किटाणु की भांति हमारे बाल सम्बन्धी आदर्शों को खाती रहेगी।

बालक और प्रौढ़ की क्रियाओं के भेद से स्पष्ट है कि दोनों क्रियाएं मनुष्य समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। प्रौढ़ ने वातावरण को अपने आदर्श के अनुसार बदलना है। बालक ने अपने जीवन विकास नियम के अनुसार अपने आप को पूर्ण करना है। मनुष्य समाज को वातावरण तथा व्यक्ति दोनों की पूर्णता की आवश्यकता है। इसलिए दोनों का संग्राम सम्मान का पात्र है। हमें बालक की क्रियाओं का अधिक या कम से कम इतना सम्मान करना ही चाहिये जितना हम अपने कार्य का करते हैं। बालकों की क्रियाएं और माता पिता की क्रियाएं दोनों ही कार्य हैं इस लिए बालक उतने ही सम्मान के पात्र हैं जितने माता पिता। वास्तव में बालक की क्रियाएं हम प्रौढ़ों से कहीं अधिक उत्तम हैं और इसलिए बालक हमारे सम्मान का ही नहीं परन्तु श्रद्धा का भी पात्र है।

बालक और प्रौढ़ की क्रियाओं के भेद से यह भी स्पष्ट है कि बालक अपनी जीवन रचना स्वयं क्रियाओं द्वारा ही कर सकता है। हम उस के स्थान पर क्रियायें करके उसकी आत्मिक रचना नहीं कर सकते। यदि हम बालक को स्वयं क्रिया न करने दें, उसे अपने पर निर्भर रक्खे रहें तो बालक का विकास पूर्णतः बन्द हो जावेगा।

बालक की क्रियाएं मनमुखी क्रियाएं नहीं। उस की क्रियाएं संवेदन काल से ज्योतिर्मान क्रियाएं हैं। यह संवेदन काल प्रकृति नियमबद्ध है, इसलिये बालक की क्रियाएं भी प्रकृति नियमबद्ध हैं। वह हमारी चीजें तोड़ने के लिए अपने नन्हें २ हाथ नहीं बढ़ाता। वह तो अपने प्रकृति नियुक्त संवेदन काल की प्रेरणा के अनुसार, अपने हाथों और आखों की क्रियाओं का पारस्परिक संयोजन कर रहा है। जब बालक स्वयं दूध पीना चाहता है तो वह हमारा

दूध फैलाना नहीं चाहता वह तो जीवन संग्राम करना चाहता है। उस की गति विकृत भावना का प्रकाश नहीं, जीवन विकास की सूचक है।

अतएव हमें बालक के जीवन विकास के संवेदन कालों का सम्मान करना चाहिए। सम्मान का अर्थ है कि उसे उसकी क्रियाओं के लिए सामग्री और वातावरण दें। शिक्षा का आदर्श बालक को ऐसी उपयुक्त सामग्री और साधनों द्वारा प्रौढ़ निर्भरता से स्वतन्त्र करके वातावरण के साथ उचित सम्बन्ध उत्पन्न करना है।

प्रौढ़ और बालक की क्रियाओं के भेद की ज्योति में माता पिता और शिक्षकों को बालक के सम्बन्ध में दो और बातों का ध्यान रखना चाहिए। वातावरण और सामग्री स्वयं अच्छी या बुरी नहीं होती। उनका उपयोगी या अनुपयोगीपन बालक के संवेदन काल के अनुसार नियुक्त होता है। यदि बालक को ऐसी सामग्री दी जावे जो उसके संवेदन कालों के अनुसार न हो तो वह सामग्री विकास सहायक होने के स्थान पर बाधा का साधन बन जावेगी। इसलिए बालक की क्रियाओं का वैज्ञानिक निष्पक्षता के और उत्साह से अध्ययन करना चाहिए। और यदि हम बालक के वृत्ति सच्चे प्रेमी हों तो यह हमारा प्रेम ज्योति बन कर हमें बालक के संवेदन कालों का बोध देगा।

पुनः हमने देखा कि बालक को विकास क्रियाओं का कोई सरल पथ नहीं। बालक के कार्य करने की गति हमारे कार्य की गति से भिन्न है। हम बालक के करने की गति को अपने से भिन्न पाकर उस पर क्रोधित होते रहते हैं, उसे कार्य नहीं करने देते और उसके लिए स्वयं कार्य कर लेते हैं। हमारे कार्य करने का नियम कम से कम बार करना और कम से कम शक्ति व्यय करना है। बालक की गति का नियम बार २ गति करना और पूरी शक्ति उसमें डालना है। आत्मकेन्द्रित प्रेम के वशीभूत होकर हम अपने गति के नियम को ही केवल ठीक समझ कर बालक के गति नियम को गलत समझते हैं और उसे रद्द कर देते हैं। शिष्टाचार की मांग यह है कि हम बालक को सही कर्मचारी समझें, और उसे उसके नियमानुसार क्रियाएं करने दें। ठीक है बालक हमारे संग्राम पर निर्भर करता है, लेकिन हम भी तो बालक के संग्राम पर निर्भर करते हैं। यदि बालक अपना जीवन संग्राम न करे तो मनुष्य जाति का इतिहास कहां रहे? प्रौढ़ को चाहिए कि वह बालक को अपने समान समझे। और दोनों

का सम्बन्ध उन दो आत्म सम्मानी व्यक्तियों सा होना चाहिए जो एक दूसरे के काम को सराहते हों। इसी में मनुष्य जाति की एकता और विकास है।

सारांश

बालक के विकास और शिक्षा में सहायक होने के लिए माता पिता तथा शिक्षक को बालक की क्रियाओं का महत्व और उद्देश्य समझना अनिवाय है।

क—बालक और प्रौढ़ की क्रियाओं का उद्देश्य एक नहीं। उनकी क्रियाओं में भेद मात्रा का नहीं गुणों का है। बालक की क्रियायें प्रौढ़ की क्रियाओं के सरल या अधूरे या निम्न रूप नहीं, वह भिन्न प्रकार की हैं।

ख—(१) बालक की क्रियाओं का उद्देश्य अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करना है। प्रौढ़ की क्रियाओं का उद्देश्य वातावरण पर अधिकार जमा कर अपनी इच्छाओं को पूरा करना है। प्रौढ़ पानी का भरा हुआ गिलास पानी पीने के लिए उठाता है। बालक पानी का भरा हुआ गिलास बिना प्यास भी उठाता है। उसका उद्देश्य अपने हाथों की शक्ति को बलवान करना है।

(२) बालक अपनी क्रियाओं के करने में भरसक शक्ति लगाता है। प्रौढ़ अपनी क्रियाओं को करने में कम से कम शक्ति लगाता है। बालक के चलने की क्रिया और प्रौढ़ के चलने की क्रिया की तुलना करें तो यह भेद स्पष्ट हो जाता है।

(३) बालक अपने प्रयत्न द्वारा ही अपने व्यक्तित्व की पूर्णता कर सकता है इसके विपरीत प्रौढ़ दूसरों के परिश्रम के फल को अपहरण कर सकता है। बालक को बोलना स्वयं संग्राम द्वारा सीखना है। यह प्रयत्न कोई दूसरा उसके लिए नहीं कर सकता।

(४) बालक का क्रियाओं द्वारा विकास सरल नहीं उसकी विधि नियमबद्ध है और क्रमानुसार ही हो सकती है।

ग—बालक की क्रियाओं के इन उपरोक्त चार गुणों का उसकी शिक्षा के लिए क्या महत्व है ?

(१) बालक की क्रियाओं का अर्थ समझने से उन्हें अपने उद्देश्यों से भिन्न पाकर उनकी सराहना और सहायता करनी चाहिए। बालक की क्रियाओं

पर क्रोधित होना अशिक्षितता है । उसे उसकी क्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व की पूर्ति के लिए साधन देने चाहिएँ ।

(२) बालक की क्रियाओं में भरसक संग्राम की आवश्यकता है, समझने पर हम उस पर रोषित होने के स्थान पर सराहना करेंगे ।

(३) बालक स्वयं क्रियाओं द्वारा ही विकसित हो सकता है इसलिए उसे स्वयं क्रियाओं के अधिकार देने चाहिएँ। हम उसके स्थान पर चीज़ें उठाना, बोलना या चलना नहीं सीख सकते, इसलिए उसे अधिक से अधिक स्वयं क्रिया के अवसर मिलने चाहिएं ।

(४) क्रियाओं द्वारा विकास की शिक्षा में अधीरता बालक की क्रियाओं के चौथे गुण का निरादर करना है। बालक अपनी स्वभाव नियुक्त विकास मति में ही प्रगति कर सकता है ।

———

८

बालक के विकास और पतन की सामग्री वातावरण में ही है

हमने इस सत्य का अध्ययन किया है कि बालक के जीवन विकास की प्रकृति, नियुक्त प्रणाली है, जो संवेदन कालों में बंधी हुई है। यह संवेदन काल बालक की मानसिक शक्तियों को प्रकृति के विभिन्न भागों से परिचय करने के लिये और उन्हें उनके साथ मेल में लाने के लिये विशेष गतियों पर प्रेरित करते हैं। यदि बालक को गतियों के लिये उपयोगी वातावरण न मिले और इस प्रकार बालक गतियाँ न कर सके तो बालक की मानसिक शक्ति अपने जीवन नियुक्त पथ को छोड़कर इधर उधर तृप्ती ढूँढती है। यदि पानी की नाली बन्द की जाये तो उसका पानी चारों तरफ फैल जाता है और सारी जगह गन्दी कर देता है। पानी, नाली छोड़ने पर वातावरण के हवाले हो जाता है। उसकी अपनी कोई गति नहीं रहती। इसी प्रकार जब बालक की शक्ति अपने जीवन विकास में व्यस्त नहीं हो सकती तो वह शारीरिक रोगों तथा असामाजिक व्यवहारों में प्रकाश पाती है।

हम सब ही जानते हैं कि हमारे मन और शरीर में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब हम क्रोधित होते हैं तो इसका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। हमारे शरीर की क्रियाओं में स्पष्ट परिवर्तन आ जाता है। मनोविज्ञान ने यह प्रयोग करके दिखाया है कि क्रोध की अवस्था में केवल मुँह आँखों आदि में ही परिवर्तन नहीं आता परन्तु पाचन क्रिया भी बन्द हो जाती है। माता मॉण्टेसोरी ने कई सच्ची घटनाओं द्वारा यह स्पष्ट करके दिखाया है कि जब मानसिक शक्ति विपथ हो जाती है तो वह शारीरिक रोगों और दुःखों में प्रकाश पाती है। माता मॉण्टेसोरी ने एक स्कूल का दृष्टान्त दिया है जो स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से पूर्ण सन्तोषजनक था, परन्तु इसमें कई बालक बीमार रहते थे और कुछ का बुखार उतरता ही नहीं था। यह एक धर्मसमाज का स्कूल था जहाँ उपदेशों या साधनों में जाना बालकों के लिये आवश्यक था। स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की अनिवार्य स्थिति बच्चों को रुचिकर न थी। उनके मन में विरोध की अग्नि

जल रही थी जिसने ज्वर जैसे शारीरिक रोग में प्रकाश पाया। जब इस साधन में उपस्थिति इच्छाधीन कर दी गई तो इन बालकों को ज्वर से मुक्ति मिली।

माता मॉण्टेसोरी ने एक और घटना दी है। उन्होंने दिखाया है कि यदि बालक के किसी संवेदन काल की गतियों में हस्तक्षेप हो तो बालक में अनेक शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जो शारीरिक औषधि से ठीक नहीं हो सकते। एक परिवार लम्बी यात्रा के पश्चात् घर वापस पहुंचा, उसमें से एक बच्चा आते ही बीमार हो गया। सबका यही विचार था कि यात्रा ने इसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला है। परन्तु इसकी माता कहती थी कि यात्रा के दिनों में तो सब कुछ ठीक ठाक रहा है वह बड़े-बड़े अच्छे-अच्छे होटलों में रहते रहे हैं जहाँ उनके लिये प्रत्येक सुविधा मिलती रही है। उनके अपने लिये ठीक खाना और बच्चे के लिये पलंग मिलता रहा है। अब वह एक बड़े आरामदेह घर में रह रहे थे। पालना न होने पर बालक बड़े लम्बे चौड़े पलंग पर माता के साथ सोता था। बालक की तकलीफ रात को बेचैनी और बदहज़मी से शुरू हुई। रात को उसे गोदी में लेकर घुमाया जाता क्योंकि उसका रोना चिल्लाना पेट दर्द के कारण समझा जाता था। विशेष डाक्टरों को उसे दिखाया गया और उनमें से एक ने बालक के लिये विशेष भोजन जिसमें बहुत से विटामिन हों, खिलाने के लिये कहा। यह विशेष भोजन भी उसे खिलाया गया। सूर्य स्नान और बहुत सी आधुनिक शारीरिक विधियां उसके लिये काम में लाई गईं परन्तु रोग बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। बालक के शरीर में अकड़न और आती और हाथ पॉव और अधिक मुड़ने लगते और ऐसा दिन में दो तीन बार होता। बालक दर्द से तड़पता था। आख़िरकार यह फैसला हुआ कि शनाल् प्रणाली के विशेष डाक्टर को बुलाया जाए। इस समय माता मॉण्टेसोरी ने अपनी सेवा भेंट की। उन्होंने देखा कि बालक अच्छा स्वस्थ लगता था, इसीलिये उन्होंने सोचा कि इसकी तकलीफ़ का कारण मनोवैज्ञानिक है। उन्हें एकदम एक बात सूझी। उन्होंने दो बाँहो वाली कुर्सियां लेकर आमने सामने जोड़ दीं ताकि उनसे एक छोटा सा पालना बन जावे और इसमें फिर कम्बल चद्दरें इत्यादि बिछा दीं ताकि वह बिस्तरा लगे। फिर इन कुर्सियों को बालक के पलंग के निकट कर दिया। बालक ने उसकी ओर देखा, रोना बन्द कर दिया और झट लुढ़क कर कुर्सियों के उस पालने के पास पहुंचा और उसमें जा लेटा। तुरन्त ही उसे नींद आ गई और उसकी बीमारी का

लक्षण फिर कभी दिखाई नहीं दिया। बालक की यह रुग्ण अवस्था परिपाटी की अनुपस्थिति के विरुद्ध विद्रोह था। उसकी आन्तरिक परिपाटी के संवेदन काल की गति में बाधा पड़ गयी थी। वह पालने में सोने का अभ्यासी था जो उसके सारे शरीर के अंगों को सहारा देता था, परन्तु यह बड़ा पलंग उसके किसी अंग को भी सहारा नहीं देता था, न ही उसका कोई अंग उसके साथ लगता था। बालक को बड़ा बिस्तरा ऐसा ही दुखदाई था जैसे किसी को समुद्र में फेंक दिया गया हो। बालक को बड़े पलंग पर लिटाने पर उसके आन्तरिक अंगों की परिपाटी में गड़बड़ हो गई थी। यह घटना बताती है कि संवेदन काल की गतियों में हस्तक्षेप बालक और माता पिता के लिये, शारीरिक रूप से भी कितना दुखोत्पादक है। रचनात्मक शक्तियाँ महाबली होती हैं, उनमें हस्तक्षेप सिन्धु नदी में हस्तक्षेप है।

माता मॉण्टेसोरी ने तीसरी घटना इस प्रकार दी है। कुछ लोग नेपाल में सैर करने जा रहे थे जिनमें माता मॉण्टेसोरी भी थीं। इस संघ में एक माता अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे के साथ थी। थोड़ी दूर चलने के बाद बालक थक गया और उसे माता ने उठा लिया। थोड़ी दूर और जाने के बाद, माता को गर्मी लगने लगी। उसने अपना कोट उतार कर कन्धे पर रख लिया और फिर बालक को उठा लिया। बालक ने चिल्लाबा शुरू किया। माता ने पुचकार ने की कोशिश की परन्तु वह चुप न हुआ। बालक का रोना सारे संघ को क्रोधित कर रहा था। संघ के लोगों ने एक-एक करके उसे उठाया परन्तु उसने चीखना चिल्लाना बन्द न किया। प्रत्येक ने उसे झाड़ा परन्तु वह अधिक ही रोने लगा। माता मॉण्टेसोरी ने यह देखते हुये, बाल जीवन की पहेलियों पर विचार किया कि बालक की प्रत्येक क्रियाका कारण अवश्य होता है। कुछ सोचने के बाद उन्होंने बालक की माता से कहा कि आप कृपा करके अपना कोट पहन लें। उसके कोट पहनते ही बालक ने रोना बन्द कर दिया, और खुशी से कहने लगा 'मम्मी कोट', जिसका अर्थ यह था कि "मम्मी कोट पहनने के लिये ही है।"

बालकों के ज्वर, उनकी रात की बेचैनी, उनकी अकड़न, उनका रोना चिल्लाना किस बात का परिणाम है? क्या ऐसे ज्वर, ऐसे अकड़न ऐसा चीखना चिल्लाना जन्मजात हीनतायें हैं या वह वातावरण उत्पन्न घटनायें हैं? क्या यह घटनायें बालक के विकास के चिह्न हैं या उसके पतन के चिह्न

हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि अस्वस्थ अवस्था पतनकारी अवस्था है और इस पतनकारी अवस्था के लिये वातावरण ही उत्तरदायी है। इसका प्रकट परिणाम यह है कि जब इन बालकों के प्रतिकूल वातावरण बदल दिये गए, तो बालक तुरन्त ही स्वास्थ्यदायक अवस्था में आ गये। क्या माता-पिता तथा शिक्षकों ने कभी यह सोचा है कि बालक के संवेदन कालों का अध्ययन बाल पालन पोषण के लिये कितना आवश्यक है और इनकी अज्ञानता से हमारे लिये बालक को अनुकूल वातावरण देना कितना असम्भव है ? शारीरिक तथा मानसिक रोग इतने विश्वव्यापी हैं कि हम उन्हें आदिम दोष या स्वभाविक और आवश्यक अवगुण समझते हैं। परन्तु वास्तव में इन अवगुणों की विश्वव्यापी उपस्थिति बालकों में संवेदन कालों के सम्बन्ध में हमारी दृश्यव्यापी है जो हमें बालकों को विश्वव्यापी अज्ञानता और इस कारण प्रतिकूल वातावरण देने पर उद्यत करती है। माता मॉण्टेसोरी ने कहा है कि संवेदन कालों का अध्ययन मनुष्य जाति के लिये सबसे अत्यन्त हितकारी होगा।

जिस प्रकार बालक के अनेक शारीरिक रोग और दुःख प्रतिकूल वातावरण के कारण विपथ मानसिक शक्तियों से वर्णित हो सकते हैं, वैसे ही बालक के मानसिक रोग अर्थात उसके असामाजिक व्यवहारों का भी यही कारण है। मानसिक शक्ति ढलने वाली शक्ति है। यदि उसे अपनी उपयोगी वस्तु न मिले तो वह दूसरी वस्तुओं के साथ लगाव कर लेती है। यदि मानसिक शक्तियों को वातावरण में क्रियायें करनी न मिलें तो काल्पनिक दुनियाँ में व्यस्त हो जाती हैं। उनका वास्तविकता के साथ सम्बन्ध कट जाता है। ऐसे बालक काल्पनिक हो जाते हैं और उन्हें हम कई बार झूठा कहते हैं। यह अवस्था यदि बढ़ जावे तो पागलपन में परिवर्तित हो जाती है। वास्तविकता से कट जाना ही पागलपन है। जब बालक अपने वातावरण में रुचि न ले तो इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि वह अस्वस्थ है और उसके वातावरण में तुरन्त और क्रान्तिमय परिवर्तन होना चाहिये। यदि ऐसा ही वातावरण जारी रहे तो बालक के लिये चुलबुला और शरीर होना या अकेला व अलग रहना स्वाभाविक हो जाता है। माता मॉण्टेसोरी ने कहा है कि बालक की पहली शरारत बालक का पहला मन रोग है।

इसी प्रकार बालक के लिये ज्ञात और अज्ञात रूप से ज़िद्दी होना, उसके लिये वस्तु लोभी या शक्ति लोभी होना, उसमें हीन भाव का होना, यह

सब उसकी मानसिक शक्तियों के विपथ होने के कारण हैं। इनका वर्णन हमने चौथे अध्याय में किया है।

जैसे बालक के शारीरिक और मानसिक रोगों का कारण वातावरण है, उसी प्रकार बालक के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की सामग्री भी वातावरण में ही है। माता मॉण्टेसोरी के स्कूलों में देखा गया है कि ऐसे बच्चे जो पीले ज़र्द थे या रोगी थे, वे स्वस्थ बन गये। इसी प्रकार जो बालक पहले खाने के लोभी थे, चीज़ों के लिये लड़ते थे, अनुचित हीन भावी थे, जो किसी भी वस्तु में रुचि न लेते थे, वह मॉण्टेसोरी के स्कूलों में पढ़कर इन सब बुरी आदतों से मुक्त हो गये। मॉण्टेसोरी के स्कूलों की विशेषता यह है कि वहाँ बालक को उसके संवेदन काल की माँगों के अनुसार क्रिया साधन मिलते हैं। और अध्यापक कम से कम बालक की क्रियाओं में हस्तक्षेप करते हैं। माता मॉण्टेसोरी ने अध्यापक को बालक की गतियों के अध्ययनकर्ता की स्थिति दी है। बालक को स्वयं अपना अध्यापक बनाया है। शिक्षक का काम शिक्षा देना नहीं परन्तु बालक के संवेदन कालों के अनुसार विशेष वातावरण उपस्थित करना है, जिसमें बालक स्वतन्त्र रूप से जीवन विकास की गतियां कर सके।

वातावरण केवल वस्तु सामग्री से ही समूहित नहीं, इसमें प्रौढ़ों की मानसिक वृतियाँ भी सम्मिलित हैं। इस उपयोगी वस्तु सामग्री और मानसिक वृतियों का वर्णन हम विस्तारपूर्वक आगे चलकर करेंगे।

सारांश

क—माता मॉण्टेसोरी के अनुसार बालक का ठीक विकास और शिक्षा संवेदन कालों के अनुसार वातावरण में उपयोगी सामग्री और साधनों द्वारा ही सम्भव है।

ख—अनुपयोगी वातावरण बालक के संवेदन कालों की प्रेरणाओं को विपथगामी करके उसे शारीरिक रोगी बना देते हैं।

माता मॉण्टेसोरी ने एक बालक के ज्वर, दूसरे बालक के अकड़ने और तीसरे बालक के रोने चिल्लाने के दृष्टान्तों द्वारा इस बात को स्पष्ट किया है।

अनुपयोगी वातावरण मानसिक शक्ति को विपथ करते हैं और उसे

दैनिक क्रियाओं का एक साधन

९
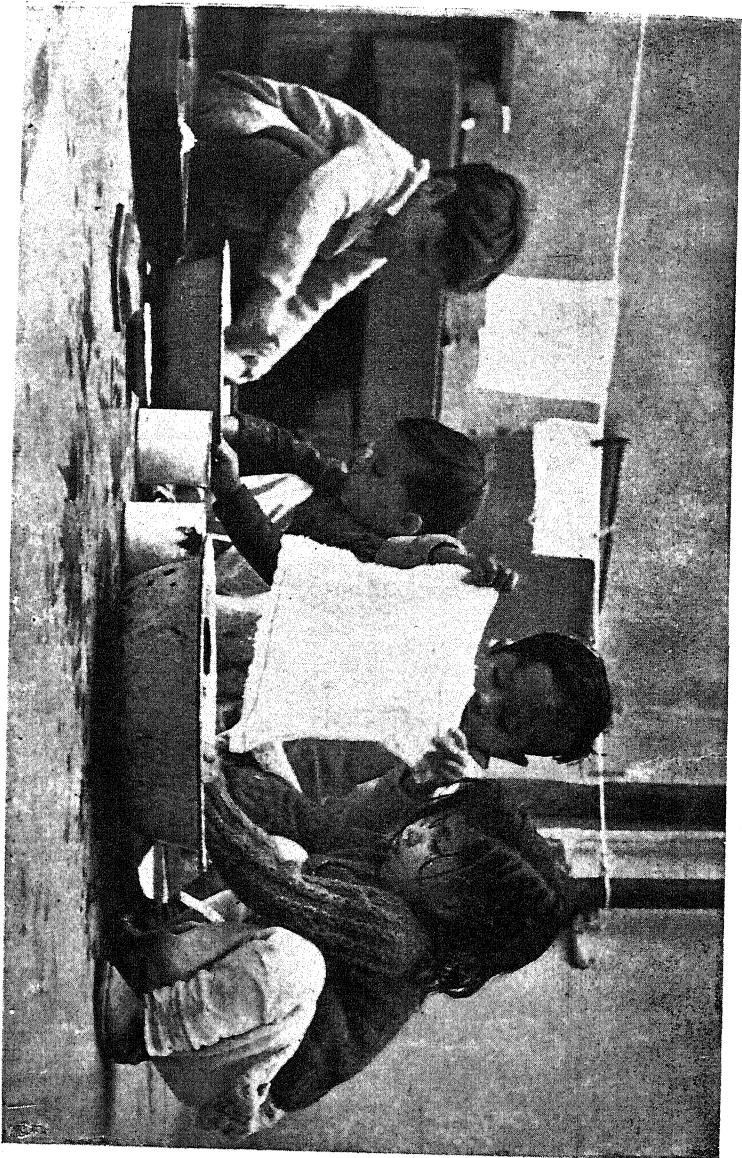
बालक का पहला स्कूल—घर

हम साधारण शिक्षा, पढ़ाई लिखाई को समझते हैं और शिक्षा का सम्बन्ध स्कूल के साथ समझते हैं। परन्तु यह विचार पूर्णतया मिथ्या हैं। आजकल सब शिक्षण नेता इन मिथ्या विश्वासों का खण्डन करते हैं। सब इस बात पर सहमत हैं कि शक्तियों का विकास व्यक्ति को मनुष्यता से दूर रखता है मानसिक और भावविकास बिना मनुष्य केवल एक होशियार पशु रहता है। वह सामाजिक दृष्टि से एक बुद्धिमान राक्षस की स्थिति रखता है। आज हमारे मनुष्य समाज के दुःख, क्लेश, विरोध और युद्ध भावविकास से उदासीन होने का नकद इनाम है। आज मनुष्य समाज में पढ़े-लिखे और हुनर वालों की कमी नहीं परन्तु इनका जीवन टटोल कर देखें तो कैसा भयानक दृश्य सामने आता है!

अतएव शिक्षा का उद्देश्य मुख्य रूप से भाव विकास है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति समाज और व्यक्तित्व के साथ ठीक सम्बन्ध जोड़ सके। जिस व्यक्ति का सम्बन्ध समाज और वास्तविकता के साथ सन्तोषजनक और सुख-मय नहीं वह शिक्षित नहीं। जो व्यक्ति समाज के साथ अपनत्व को लेकर सदा संघर्ष में रहता है, जो दूसरों के साथ मिलकर जीवन सफलता के आदर्शों को पूरा करने में सहयोग नहीं दे सकता, वह शिक्षा उद्देश्यों से निर्वासन लिए हुए है। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि हमारा भाव विकास इस प्रकार हो कि—

(१) हम समाज के साथ उपयुक्त मेल की अवस्था में हों और इस अवस्था में होकर खुश रह सकें। शुभकर सम्बन्ध का अर्थ यह है कि हम समाज के आदर्शों को अपना सकें और अपना कर सुख व आनन्द अनुभव करें। आज अवस्था तो यह है कि हमारे आदर्शों में विरोध है। प्रत्येक परिबार एक युद्ध का किला बना हुआ है; और ईर्ष्या, द्वेष, भय, बद-दयानती, झूठ पर हमारे परस्पर सम्बन्धों की नींव है। हमारा स्वार्थ सामाजिक आदर्शों के विरुद्ध

पड़ता है। अपने आप को सभ्य कह कर भी हमारा परस्पर व्यवहार 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' पर निर्भर है। परस्पर सम्बन्धों में न्याय और प्रेम इसलिए नहीं कि हम ग़लती से पढ़ाई को शिक्षा समझते रहे हैं। और इसीलिए अपने भाव विकास से विमुख और उदासीन रहे हैं। केवल यही नहीं बल्कि हमने जान बूझकर भावविकास का निरादर किया है और इसीलिए हम दुःख उठा रहे हैं।

(२) शिक्षा का उद्देश्य जैसे भाव विकास करके समाज के साथ ठीक सम्बन्ध में आना है वैसे ही वास्तविकता के साथ ठीक सम्बन्ध रखना भी है। मनुष्य के दो जगत हैं— वास्तविक जगत और काल्पनिक जगत। जितनी मात्रा में हम वास्तविकता से कट कर काल्पनिक दुनिया में व्यस्त रहें उतनी मात्रा में हम मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाते हैं और इसीलिए सत्य की दुनिया से कट जाते हैं। पागलपन का अर्थ वास्तविकता से पूर्ण कट जाना ही है। पागल की कल्पना शक्ति एक ताज़ी घोड़े की भांति वास्तविकता के किले से कट कर बेतहाशा भाग उठती है। हम में से अनेक वास्तविकता से अन्धे रहते हैं। कारण यह है कि हमारी भाव शक्तियों का विकास न होने के कारण हम वास्तविकता के साथ एकता स्थापित नहीं करते। हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत मिथ्या सहारे इसी बात के चिह्न हैं। उदाहरणार्थ—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में हमने राष्ट्र संघ जैसी संस्था को सहारा बनाया, और अब उसके असफल होने पर भी नये नाम की वैसी ही गठन को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए सहारा बना रहे हैं। फ्रौयड का विचार है कि ईश्वर को अपना सहारा बनाना काल्पनिक दुनिया का सहारा लेना है। व्यक्तिगत रूप से भी हम अपने मिथ्या सहारे बनाते हैं, जब हम गौण को मुख्य समझ लेते हैं। पैसे को, या पद को, एक या दूसरे सम्बन्धी को, जब हम जीवन विकास और अनुभव से भी अधिक स्थान देते हैं, तो हम काल्पनिक सहारे बनाते हैं।

जब शिक्षा का उद्देश्य भाव विकास है और भाव जन्म से ही होते हैं तो शिक्षा जन्म से ही आरम्भ होनी चाहिये। माता पिता बालक के पहले. शिक्षक हैं। शिक्षा पाठशाला से आरम्भ नहीं होती, घर से होती है। घर तो बाल पौदे की उपजाऊ धरती है जिससे वह सदा प्रभावित होता रहता है। आधुनिक मनोविज्ञान और शिक्षा का यह निश्चित विचार है कि बालक के जीवन के पहले पांच वर्ष उसके विकास में उत्तम स्थान

रखते हैं। यदि इन वर्षों की शिक्षा ग़लत हो जावे तो फिर उन्हें ठीक मार्ग पर लाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि बालक की शिक्षा में माता पिता का कितना निर्णायक भाग है। माता पिता को बाल शिक्षा की नींव रखनी है जिस पर अध्यापक को भवन निर्माण करना है। यदि नींव अधूरी, कच्ची या बिगड़ी हुई बन जावे तो भवन भी स्थायी नहीं रह सकता। यह नींव भावों की है, ईंटों की नहीं। इसलिए जहां कच्ची नींव पर मकान कुछ देर खड़ा रह सकता है वहां बलवान शक्तियों के बिगड़े रूप पर स्वस्थ्य वृत्तियां क्षण भर के लिए भी नहीं बनाई जा सकतीं। यह नींव के भाव बाकी जीवन पर सदा आक्रमण करते रहते हैं और उसे सदा पराजित करते रहते हैं। माता पिता का उत्तरदायित्व कितना महान् है।

माता पिता का प्रत्येक व्यवहार बालक के लिए जीवन विकास की सामग्री है या जीवन बाधा का साधन है? हमारा व्यवहार और वृत्तियां ही बालक के भाव विकास के वातावरण हैं। प्रत्येक जीवित वस्तु वातावरण में विकसित या पतित होती है। यदि अच्छा वातावरण मिले तो जीवित वस्तु बढ़ती है। उदाहरणार्थ यदि शरीर को साफ़ और ताजी हवा, अथवा अच्छा भोजन मिले तो वह विकसित होता है यदि उसे प्रतिकूल वातावरण मिले अर्थात् गन्दी हवा, खराब भोजन मिले, तो वह पतन की ओर जाता है। इसी प्रकार बालक के भाव विकास के लिए अनुकूल मानसिक वातावरण चाहिए। बालक का मानसिक वातावरण उसके माता-पिता की वृत्तियों और व्यवहारों से समूहित है। यदि यह वृत्तियां और व्यवहार बालक के भाव विकास की मांगों के अनुसार हों तो बालक का उपयुक्त भाव विकास हो जाता है। यदि यह उसकी मांगों से विद्रोह करती हों तो बालक मानसिक भाव विपथ होकर अशुभकर मार्गों पर पड़ जाता है। हमने यह सत्य चौथे और आठवें अध्याय में दृष्टान्त द्वारा वर्णन किया है।

यदि माता पिता की वृत्तियां और व्यवहार ही बालक के अध्यापक हैं और विकास की परिस्थितियां हैं, तो हमें इनका ज्ञान कितना आवश्यक है!

सारांश

क—आधुनिक शिक्षा नेताओं की भांति माता मॉण्टेसोरी शिक्षा को

पढ़ाई लिखाई के साथ समरूप नहीं करतीं। शिक्षा का उद्देश्य

(१) केवल बुद्धि विकास ही नहीं।

(२) इसका उद्देश्य भाव विकास भी है।

ख—भाव विकास का उद्देश्य इस में है कि बालक

(१) प्रकृति के साथ मेल में रहे।

(२) समाज के साथ मेल में रहे।

(३) अपने साथ मेल में रहे।

और इनके साथ उचित सम्बन्ध स्थापना द्वारा उसे सुख का अनुभव हो।

ग—भाव जन्म से ही होते हैं इस लिए शिक्षा का आरम्भ जन्म से ही होना चाहिए स्वभावतः माता-पिता बालक के पहले शिक्षक हैं। उनकी भाव-विकास शिक्षा प्रणाली का अध्ययन और प्रयोग बाल शिक्षा योजना का आधार है।

———

१०

पालन पोषण का उद्देश्य

माता मॉण्टेसोरी ने बताया है कि पशुओं का व्यवहार हमारे लिए बहुत शिक्षाप्रद है। पशुओं में बालक के जन्म लेने पर माता विशेष वातावरण उत्पन्न करती है। दूध देने वाले पशु साधारणतः इकट्ठे रहते हैं। परन्तु ऐसा देखा गया है कि जब माता के बच्चा होने को होता है तो वह अपने गरोह को छोड़ जाती है और एक विशेष स्थान पर पहुंचती है जो कि रोशनी और आवाज़ से सुरक्षित हो। वहां पर माता बालक को शिक्षा देती है और तब तक अलग रखती है जब तक वह वातावरण के साथ स्वयं सम्बन्ध स्थापित करने के योग्य न हो अर्थात् माता जब अपने बालक को अलग स्थान पर रखती है तो उसके दो उद्देश्य होते हैं। एक तो बालक के शरीर की रक्षा और दूसरे उन्नति। परन्तु केवल यही उद्देश्य नहीं, प्रकृति ने बालक के लिए दूध और माता के शरीर की गर्मी के रूप में बालक के शारीरिक वातावरण की कठिनाईयों के विरुद्ध यथेष्ठ प्रबन्ध किया हुआ है। माता बालक को अलग अकेली इसलिए पालती-पोसती है कि वह प्रकृति के दूसरे उद्देश्य की पूर्ति करे और वह है उसकी सर्व साधारण प्राकृतिक शक्तियों का विकास। इस विकास के लिए ही माता अलग बच्चे के साथ रहती है। दृष्टान्त लीजिए—

जंगली गायें कई हफ्ते अपने झुण्ड से अलग रहती हैं और बछड़े को बड़े प्रेम से पालती है। जब उसे ठण्ड लगती है तो वह उसे सामने के खुरों से ढँक लेती है। जब वह गदला होता है तो वह उसे चाट लेती है। जब उसे दूध पिलाती है तो तीन टाँगों से खड़ी हो जाती है और जब तक वह छोटी, गाय या बैल न बन जाय तब तक उसे वापस अपने झुण्ड में नहीं ले जाती। इसी प्रकार घोड़ी अपना बच्चा किसी को तब तक नहीं दिखाती जब तक वह सचमुच छोटा घोड़ा न बन जाय। बिल्लियां अपने बंलूगड़े तब तक नहीं दिखातीं जब तक उनकी आँखें न खुलें और वह अपने पांवों पर खुद न चलने लगें अर्थात् जब तक छोटी बिल्लियां न बन जावें। संक्षेप में पशु अपने बच्चों का पालन पोषण केवल शारीरिक रक्षा और उन्नति तक सीमित नहीं रखते अपितु

उनकी मानसिक शक्तियों अर्थात् सर्व साधारण प्राकृतिक शक्तियों की उन्नति के साधन भी उपस्थित करते हैं। पशुओं के इस पालन पोषण से हमें सबक सीखना चाहिए। इसके विपरीत मनुष्य समाज में माता पिता बालक की केवल शारीरिक आवश्यकताओं की ओर ही ध्यान देते हैं। परन्तु हमें यह जान कर हैरानी होगी कि जब यही पशु मनुष्यों के साथ रहने लगते हैं तो उनका यह बाल रक्षा बोध नष्ट हो जाता है या बिगड़ जाता है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि पालतू सूअरनी प्रायः अपने बच्चों को खा जाती है परन्तु जंगली सूअरनी सबसे अधिक प्यार देने वाली माँ समझी जाती है। चिड़ियाघरों में देखा गया है कि शेरनी और चीतनी अपने बच्चों को मार देती हैं। उपरोक्त दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि वातावरण का स्वाभाविक बाल रक्षा बोधों पर कितना प्रभाव पड़ता है। यदि पशुओं पर ऐसा बुरा प्रभाव पड़ सकता है तो मनुष्य पर जो अधिक प्रभावाधीन है—कितना पड़ सकता है। हमारी सभ्यता हमारे स्वाभाविक बोधों की नाशक प्रमाणित हो रही है। हमारी सभ्यता बालक की मांगों का अधिक से अधिक निरादर कर रही है। हमारी सभ्यता प्रौढ़ों की मांगों को पूरा करने के लिए है। अब तक समाज में मज़दूर और स्त्रियों के अधिकारों के लिए आन्दोलन हुए हैं, मज़दूर और स्त्रियां दोनों ही प्रौढ़ हैं। प्रौढ़ समाज ने अपनी जाति के लिए सुविधाएँ रची हैं, केवल आज कल ही बालक के अधिकारों के लिए कुछ आवाज़ उठाई जा रही है परन्तु इसने अभी क्रान्ति का रूप धारण नहीं किया। अभी प्रौढ़ समाज के नेताओं का उत्साही आदर्श नहीं बना। नवयुवकों का स्वप्न नहीं बना। प्रौढ़ जाति का नारा नहीं बना। अभी बाल अधिकारियों के लिए कुछ कमज़ोर धीमी आवाजें हैं। जब वह बलवान् तुरही बन जावेंगी तो समाज में एक नया स्वराज्य आ जावेगा। अभी तक हम जातीय स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं, हम मजदूर स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं, हम आर्थिक स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम बाल स्वराज्य के लिए लड़ें। बालक के स्वराज्य के लिए कोई नहीं लड़ रहा। लेकिन एक शक्ति है जो बालक के लिए लड़ सकती है और वह है माता पिता सम्बन्धी शक्ति, खून की शक्ति, जीवन की शक्ति। माता मॉण्टेसोरी प्रत्येक माता पिता से मांग करती हैं कि वह अपने खून के लिए लड़ें और उन्हें अधिकार दिलावें।

पशुओं के पालन पोषण से जो सत्य प्रकट हुआ है वह यह है कि बालक

पालन पोषण केवल शारीरिक हित करना नहीं अपितु उसमें उसकी भाव शक्तियों या सर्व साधारण प्राकृतिक शक्तियों का भी हित करना है। इसकी सत्यता मनुष्य बालकों पर प्रयोग द्वारा भी स्थापित हो चुकी है। एक डाक्टर ने बच्चों के लिए एक चिकित्शाला खोली उसमें ऐसे बच्चे रखे जाते थे कि जिन्हें मां का दूध ठीक नहीं बैठता था और इसलिए उन्हें ऊपर का दूध दिया जाता था यह चिकित्शाला स्वास्थ्य विधि और सुन्दरता की दृष्टि से पूर्ण थी इसके साथ ही उसने गरीबों के लिए भी समय रखा था। यह गरीब लोग ऊपर के दूध के सम्बन्ध में हिदायतें ले जाते थे। डाक्टर ने देखा कि उसकी चिकित्शाला के बच्चे जिन्हें पूर्ण शारीरिक अनुकूल परिस्थितियां मिलीं हुई थीं वह तो बीमार रहने लगे और गरीबों के बच्चे ठीक ठाक रहे। डाक्टर को हैरानी हुई कि बात क्या है ? जिन बच्चों को स्वास्थ्य विधि की दृष्टि से पूर्णतः असन्तोषजनक और अपूर्ण परिस्थितियां हैं वह तो हट्टे कट्टे हो रहे हैं और उसकी चिकित्शाला के बच्चे जिन्हें प्रत्येक शारीरिक प्रतिकूल वातावरण से बचाए रखा है अर्थात जिनके पास नर्सें मुंह ढँक कर जाती हैं कि कहीं बच्चों को कोई बिमारी न लग जावे, वह दिन बदिन कमज़ोर और बीमार हो रहे हैं। कई प्रयोगों के बाद डाक्टर को यह सूझा कि चिकित्शाला के बच्चों की बीमारी का कारण मनोवैज्ञानिक है अर्थात उनकी कोई मनोवैज्ञानिक मांग पूरी नहीं हो रही, वह मनोवैज्ञानिक रूप से भूखे रखे जा रहे हैं। इन बालकों के लिए चिकित्शाला में मनोवैज्ञानिक वातावरण नहीं है उसने उन्हें जीवनों में रोचक बातें दीं। उन्हें बाहर सैर करने के लिए भेजने लगा नतीजा यह हुआ कि वह फिर स्वस्थ हो गए। ऐसे और भी प्रयोग हुए हैं और इन सब ने इस सत्य की पुष्टि की है कि बालक को केवल शरीर के लिए ही खुराक नहीं चाहिए अपितु उसके मन के लिए भी खुराक चाहिए। उसे स्वास्थ्य विधि के अनुसार केवल पूर्ण वातावरण ही नहीं चाहिए बल्कि उसे मानसिक रुप से भी पूर्ण वातावरण चाहिए। इसलिए पालन पोषण का उत्तरदायित्व शारीरिक पूर्ण वातावरण से ही पूरा नहीं हो जाता अपितु पूर्ण मानसिक वातावरण की भी मांग करता है। मानसिक रुप से संतोषजनक वातावरण क्या है ? इसका वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

सारांश

पशुओं की पालन पोषण विधि तीन प्रकार से शिक्षाप्रद है।

(१) पशुओं के पालन पोषण से स्पष्ट है कि नए बालक के लिए विशेष

और पृथक वातावरण की आवश्यकता है। शिशु का वातावरण गर्भ के वातावरण का निकटवर्ती होना चाहिये।

(२) पशुओं की मनुष्य समाज में पालना से स्पष्ट है कि पालन पोषण के जन्म जात बोध वातावरणाधीन नष्ट हो सकते हैं। बाल पाल-पोषण के दोषों का कारण यह है कि हम जन्म जात बोधों को खो चुके हैं।

(३) पशुओं का पालन पोषण इस बात का भी साक्षी है कि पालन पोषण का आदर्श बालक को केवल शारीरिक रूप से सन्तोषजनक वातावरण देना ही नहीं अपितु प्राकृतिक शक्तियों के लिए मानसिक वातावरण देना भी आवश्यक है।

———

११

शिशु के लिए घर का वातावरण

बालक के जन्म लेने पर बालक की ओर हमारी क्या वृत्ति होती है? हम सब की सहानुभूति माता के साथ होती है। हम सब कहते हैं कि माता ने नया जन्म पाया है। माता के दुःख, तकलीफ़ों, और त्याग के अध्याय अनुभवी लेखकों और कलाकारों ने खींचे हैं। माता के दुःख का बदला महा-पुरुषोत्तमों ने अपने श्रद्धा और सम्मान से दिया है। माता के दुःख सहने के कारण उसे देवी का सुशोभित नाम दिया है। परन्तु बालक के साथ किसी की सहानुभूति नहीं। उसके संग्राम के लिए कोई प्रशंसा नहीं; उसके मृत्यु-घाट से सफलता पूर्वक गुज़रने के लिए कोई शाबाशी नहीं; उसके दुःखों की कोई कहानी नहीं। हालांकि बालक बिचारे के दुःख माता से कम नहीं। उसने जन्म लेने में अत्यन्त कष्ट भोगा है। उसका शरीर दबाया गया था और ऐसे दबाया गया था जैसे कि वह चक्की में पिस गया हो। उसकी हड्डियां तक स्थानान्तरित हो जाती हैं। कौन डाक्टर नहीं जानता कि बालक के सिर को कई बार कितनी गहरी चोट लग जाती है। बालक बिचारे को पहले पहल ही कितने संग्राम में से गुज़रना पड़ता है। और उसे किस मुश्किल से माता के तंग रास्ते से गुज़रना पड़ता है और फिर इस संग्राम से थक कर उसे किस विपरीत वातावरण में रहना पड़ता है। वह तो ऐसी दुनिया से आया है जहां उसे पूर्ण विश्राम था, न उसे दूध पीने के लिए संग्राम करना पड़ता था न खाने और न श्वास लेने का, न मल त्याग का संग्राम था, न रोने चिल्लाने का। परन्तु इस दुनिया में आते ही उसे यह सब संग्राम करने पड़ते हैं। वह एक ऐसी दुनिया से आया है जहां कोई रोशनी तंग करने को न थी। जहां कोई आवाज़ विश्राम में बाधक नहीं थी। जहां उसका शरीर पानी की अजीब गर्मी में रहता था, और अब उसे उसकी तुलना में बर्फ़ से ठंडे पानी में डाल दिया जाता है। इसलिए बालक को इस नये वातावरण के मेल में आने का कितना कठिन संग्राम करना पड़ता है। परन्तु बालक के उत्पन्न होते ही शुश्रूषकों का सारा ध्यान माता की ओर जाता है। उसे उसके संग्राम की थकावट के लिए वातावरण दिया जाता है।

परन्तु बालक को डाक्टर बड़ी रूखी तरह उठाता है। जब वह रोता है तो सब हँस पड़ते हैं। और फिर डाक्टर कहता है कि इसे एक तरफ़ रख दो। डाक्टर तथा नर्स फिर माता की ओर ध्यान देते हैं। बालक की ओर हमारी वृत्ति अहं भाव की होती है। बालक को एक लाचार, बेबस, बेवकूफ़, भावहीन, संग्रामहीन व्यक्ति समझते हैं और हम यह समझते हैं कि हमें इसका सब कुछ बनाना है उसे सब कुछ सिखाना है। बालक को हम रचनात्मक व्यक्ति नहीं समझते जिसने हमारा समाज बनाना है। हम बालक की ओर श्रद्धा से नहीं देखते कि बालक रचनात्मकता की अलौकिक घटना कर रहा है। वह लाचार, अज्ञानी गूंगा बालक अपने स्वयं संग्राम से वस्तुओं में भिन्नता करने लग जायेगा, शब्दों में भिन्नता करने लग जायेगा और मधुर वाणी बोलेगा। अर्थात् यह लाचार बालक अपने वातावरण पर विजय पाकर उन्हें अपना बना लेगा। बालक का कितना रचनात्मक संग्राम है? परन्तु हम अपने आत्म-केन्द्रित प्रेम से अन्धे होकर बालक के इस विचित्र और एकता रचनात्मक कार्य से विमुख रहते हैं। हम बालक को एक रोचक खिलौना समझते हैं। परन्तु माता मॉण्टेसोरी के अनुसार हमें उसे ईश्वर का रूप समझना चाहिए। और जैसे पुजारी अपने देवता के सम्बन्ध में पवित्र श्रद्धा रखता है वैसे ही श्रद्धा माता-पिता को बालक के प्रति उत्पन्न और उन्नत करनी चाहिए। यह पूर्ण मानसिक वातावरण का पहला और परम अंग है। जब तक हमारी यह सम्मान और श्रद्धा की वृत्ति न बने तब तक हम बालक के सच्चे सहायक नहीं बन सकते।

बालक के नये वातावरण के साथ मेल में आने को सहज बनाना चाहिए। बालक की कठिनाईयों का किसी अंश तक तब ही अनुभव हो सकता है जब हमें ऐसे वातावरण में जाकर रहना पड़े जहां के लोग हमारे रहन-सहन से पूर्णता भिन्न हों। जिनके खाने के अलग स्वाद हों, जिनकी खाने की विधियां अलग हों, जिनकी भाषा हम न समझते हों, जो हमारी मांगों को न समझते हों और वह हम पर हँसते हों। इस सामाजिक वातावरण के विपरीत यदि वह देश अत्यन्त ठंडा हो जहां छः माह दिन रहता हो तो हमारी अवस्था क्या होगी? बालक की अवस्था इस से भी कहीं दुःखदायी होती है। इसलिए यदि हमें बालक के साथ सच्ची सहानुभूति हो, और बालक के नये वातावरण के साथ मेल में सहायक होना हो, तो हमें उसे ऐसा वातावरण देना चाहिए जो उसकी माता के पेट के वातावरण के निकटवर्ती समान हो। बालक

अत्यन्त अँधेरी दुनिया से आया है। उसे ऐसे कमरे में रखना चाहिए जहां कम से कम रोशनी हो जहां कम से कम आवाज़ पहुँच सके। वह ऐसी दुनिया से आया है जहां उसे कोई आवाज़ न आती थी। उसके कमरे में कम से कम व्यक्तियों को जाना चाहिए ताकि बालक के आराम में कोई विघ्न न पड़े। यदि बालक को पहले ही तेज़ रोशनी कड़ी आवाज़ और विघ्नकारी व्यक्तियों का वातावरण मिले तो बालक के मन पर उसका अत्यन्त ख़राब प्रभाव पड़ता है। ऐसे अनुभव बालक के मन में वह भाव उत्पन्न कर देते हैं जो वातावरण के साथ मेल में आने में रोक बनते हैं और कई बार आयुभर रहते हैं। बालक को कम से कम कपड़े पहनाने चाहियें। अमीर लोग जो अपने कमरों में गरमाई का प्रबन्ध रखते हैं उन्हें तो बालक पर कोई कपड़ा नहीं डालना चाहिए। उन्हें कमरे का ताप बाल शरीर-ताप जितना रखना चाहिए इसी प्रकार उसे उठाने और हिलाने के लिए भी विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। हस्पतालों में रोगियों को उठाने की विशेष विधि नर्सों को सिखाई जाती है। किसी भी रोगी को बांह से पकड़ कर नहीं उठाया जाता। यदि उसे सरकाना भी हो तो, धीरे से उसके शरीर के नीचे बाहें डाल कर और उसे इस प्रकार बाहों का सहारा देकर, एक से दूसरे स्थान पर बिना उसे खड़ा किये सरका देते हैं। बालक भी रोगी की तरह एक प्रकार से शक्तिहीन व्यक्ति है। वह भी मृत्यु घाट से निकला है। इसके विपरीत वह हमारी दुनिया के साथ मेल में आने का अत्यन्त कठिन संग्राम कर रहा है। इसलिए उसे भी रोगी की तरह हिलाने जुलाने या एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का विशेष प्रबन्ध रखना चाहिए। उसे कम से कम हाथ लगाने चाहिएं क्योंकि हमारे हाथ बालक के शरीर की अपेक्षा, पत्थर से भी अधिक सख्त होते हैं। बालक को सहारे द्वारा ही उठाना चाहिये ताकि बालक के प्रत्येक अंग को सहारा मिले और उसके लेटने की स्थिति वैसी ही हो जैसे उसकी स्थिति उसकी माँ के पेट में थी।

बालक का वातावरण के साथ पहला सम्बन्ध आंखों की इन्द्रियों द्वारा होता है। वह आंखों द्वारा ही वातावरण को अपनाकर अपनी मानसिक दुनिया बनाता है। कुछ समय तक बालक केवल सीधा ही लेट सकता है। वह बैठ या उठ नहीं सकता। वह ऊपर छत की ओर ही देख सकता है या वह अपनी गाड़ी की छत की ओर देखता है जो साधारणतया सुन्दर

नहीं होती। कई माता पिता यह जानकर कि बालक कुछ देखना चाहता है उसके पालने में कुछ लटका देते हैं। परन्तु यह गलत विधि है। क्योंकि बालक को उस हिलते हुए खिलौने के लिए अपने शरीर को अस्वाभाविक रूप से मोड़ना तोड़ना पड़ता है। होना यह चाहिए कि बालक की चारपाई ऐसी ऊँची और तिरछी हो कि वह अपने कमरे के वातावरण को अच्छी तरह से देख सके और इस प्रकार उसे अपना सके। यह उसके मन के लिए अच्छा खाजा है। बालक का कमरा स्वस्थ-नियम अनुसार ही नहीं होना चाहिए परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार भी पूर्ण होना चाहिए। बालक का कमरा अत्यन्त सुन्दर होना चाहिए। उसमें चीज़ें कम होनी चाहिए परन्तु यह गिनी चुनी चीज़ें अपने रंग रूप के लिहाज़ से ऐसी सुन्दर होनी चाहिएं जो बालक की आंखों को सुख दें। खिड़कियों के शीशे सुन्दर रंगों वाले होने चाहिएं। इसी प्रकार कुछ फूल मेज़ पर फूलदान में सजा कर रखने चाहियें। बालक का कमरा उसी प्रकार से साफ़ सुथरा और सुसज्जित होना चाहिये जैसे कि मन्दिर या साधनालय होता है। इसके अतिरिक्त कमरे की यह कुछ गिनी हुई चीज़ें सदा अपने स्थानों पर होनी चाहिएं। बालक की यह एक आवश्यक मानसिक मांग है कि उसे स्थायी वातावरण मिले। स्थायी वातावरण बालक को चीज़ों के पहचानने और चीज़ों के साथ परस्पर सम्बन्ध को जानने में बहुत कुछ सहायक होता है। हमने कई दृष्टान्तों द्वारा यह बताया है कि बालक का पहले डेढ़ साल तक सम्वेदन काल परिपाटी सम्बन्धी है। हमने देखा है कि कमरे की परिपाटी न होने पर बालक स्वयं कितने दुखों में से गुज़रता है।

जैसे बालक की मांग बाह्य वातावरण में परिपाटी है, वैसे ही यह उसकी मांग है कि उसके शरीर के अंगों की परिपाटी में परिवर्तन या हस्तक्षेप न किया जाये। हमने इसका भी दो घटनाओं द्वारा वर्णन किया है। हम बालक को खिलौना समझ कर उसे बड़ी लापरवाही से नीचे ऊपर हवा में उछाल कर पकड़ते रहते हैं। इसी प्रकार उसके बिस्तर, चारपाई इत्यादि को बदलते रहते हैं। स्नान कराने में भी हम इस किस्म की बातों का ध्यान नहीं रखते।

हमने यह अध्ययन किया है कि छोटे बालकों को एक सम्वेदन काल में वातावरण की छोटी-छोटी महीन घटनाओं को देखना और जानना है। हम बालकों की ऐसी गति का निरादर करते हैं। हम साधारणतः मुख्य वस्तुओं

पर ध्यान देते हैं और नन्हीं नन्हीं वस्तुओं को छोड़ देते हैं। हमारा दृष्टिकोण व्यावहारिक होता है। इसलिए छोटी घटनाएँ जो हमारे आदर्श के लिए ज़रूरी नहीं उन्हें छोड़ देते हैं। इसी में हम बुद्धि समझते हैं। परन्तु बालक का उद्देश्य हमसे ऊँचा है। वह तुरन्त व्यावहारिक उद्देश्य से अपनी गति संचार नहीं करता। उसका उद्देश्य जीवन बनाना है। वह छोटी छोटी तथा महीन वस्तुओं को देखकर अपने वातावरण से अपने मन का खजाना बना रहा है। इसलिए यदि बालक छोटी छोटी चीज़ों पर ध्यान दे तो हमें उसे रोकना थामना नहीं चाहिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि बालक और हम अलग अलग व्यक्ति हैं। बालक हमारा छोटा रूप नहीं, इसलिए उसके जीवन की मांगें हम से अलग हैं। सभ्यता की यही मांग है कि हम बालक की मांगों का सम्मान करें। सभ्यता का चिह्न ही यह है कि सब बली बलहीन की रक्षा करें।

सारांश

शिशु के जन्म लेने पर उसे दो प्रकार का वातावरण देना चाहिये।

क—मानसिक वातावरण।

(१) बालक की शारीरिक और मानसिक अवस्था उतनी ही नाज़ुक होती है जितनी माता की। डाक्टरों, नर्सों और अन्य शुश्रूकों को बालक के जन्म लेने के संग्राम को समझना चाहिये और उसके प्रति उतना ही ध्यान देना चाहिये जितना माता की ओर दिया जाता है।

(२) बालक के रचनात्मक संग्राम के प्रति वही श्रद्धा की दृष्टि होनी चाहिये जो माता के जननी रूप के लिए होती है।

ख—शारीरिक वातावरण।

(१) बालक के कमरे का वातावरण बालक के गर्भ में वातावरण के निकटवर्ती होना चाहिए अर्थात उसमें कम से कम रोशनी होनी चाहिये, कम से कम लोगों का आना और कम से कम आवाज़ होनी चाहिये। हमारे देश की परम्परा रीति इन तीनों बातों का बहुत ध्यान रखती थी अर्थात माता को अलग कर दिया जाता था उसके कमरे में अँधेरा रखा जाता था और एक दो शुश्रूकों को छोड़कर किसी को भीतर नहीं जाने दिया जाता था।

(२) कमरा स्वास्थ्य विधि अनुसार होना चाहिये।

(३) कमरे में कम से कम वस्तुएं होनी चाहियें ।

(४) यह वस्तुएं सुन्दर, रंग-बिरंगी और आकर्षक होनी चाहियें ।

(५) यह वस्तुएं सदा परिपाटी में होनी चाहियें ।

(६) कमरे की या गाड़ी की छत पर रंगीन कागज़ इत्यादि लगा देने चाहियें ।

(७) बालक का पलंग ऐसे ढंग से रखना चाहिए कि वह लेटा लेटा कमरे की वस्तुओं को देख सके ।

(८) बालक को सरकाने या उठाने में वैसी ही सावधानी दिखानी चाहिये जो कि एक अधिक बीमार के लिए दिखाई जाती है ।

(६) बालक को स्नान कराने और पलंग या बिस्तर आदि के बदलने में सदा स्मरण रखना चाहिये कि बालक की आन्तरिक परिपाटी में हेरफेर न हो ।

———

१२

बालक की क्रियाओं के लिए घर में साधन

जब बालक बैठना आरम्भ करता है और वह चीज़ों को उठाना शुरू करता है तो माता पिता की सच्ची परीक्षा शुरू होती है। हम पहले इस बात का अध्ययन कर चुके हैं, कि बालक के हाथ ही उसकी मनुष्यता के चिह्न हैं उसके हाथ उसकी आत्मा का बाह्य ठोस चिह्न है। जैसे यदि आंख, कान और नाक की गति न हो तो मनविकास अधूरा रह जाता है इससे बढ़ कर यदि हाथ की गति को रोक दिया जाये अर्थात् बालक को निहत्था बना दिया जावे तो उसकी आत्मा पूर्णरूप से कुरूप और रोगी हो जाती है। बालक को हाथों की गति के लिए सामग्री देनी चाहिए। बालक को स्वयं गतियां करने का अधिक से अधिक अधिकार देना चाहिए। यदि बालक स्वयं दूध पीना चाहे तो उसे पीने देना चाहिए। हमें पहले ही यह ध्यान रखना चाहिए कि बालक कपड़े खराब कर लेगा। इसलिए उसे कपड़े शुरू से ही ऐसे सस्ते और सुविधा से धुलने वाले पहनाने चाहियें ताकि यदि ख़राब कर भी ले तो कोई विशेष हानि न हो। हम सब काम के वक्त ऐसे कपड़े पहनते हैं जो बेशक खराब हो जावें। एक मोटर सुधारने वाला मोटर सुधारते समय अपने कपड़े खराब कर लेता है, हम उसे दोषी नहीं ठहराते क्योंकि हम समझते हैं कि काम ही ऐसा है कि जिसमें ख़राब हो जाते हैं। एक सरजन अपना काम अर्थात् आप्रेशन करते समय विशेष कपड़े पहन लेता है। एक माँ भी जब रसोई में कपड़े ख़राब कर लेती है तो हम उसे दोषी नहीं ठहराते। काम का स्वभाव ही ऐसा है। उसमें हम अपने कपड़ों का ध्यान नहीं रख सकते और हम इसलिए काम में ख़राब हुए कपड़ों के लिए कर्मचारी को दोषी नहीं ठहराते। लेकिन बालक के साथ हमारा विशेष प्रेम है इसलिए यदि वह अपने जीवन संग्राम में कपड़े ख़राब कर दे तो उसे गाली गलौच और मारने तक को भी तैयार हो जाते हैं। बात तो यह है कि बालक अपने इस अत्याचार से रक्षा नहीं कर सकता और माता पिता को दोषी ठहराने के स्थान पर अपने आपको ही दोषी ठहराता है। हम बालक के कार्य के महत्व को नहीं समझते। उसके काम को ही नहीं

समझते। बालक घन्टों का मज़दूर नहीं वह तो सारे दिन का मज़दूर है। उसकी प्रत्येक गति जीवन विकास का संग्राम है। ईमानदार मज़दूर कपड़ों की परवाह नहीं करता। उसे तो काम की धुन है। उसमें सफलता उसका आदर्श है। बालक भी एक ईमानदार मज़दूर है जो अपने संग्राम में व्यस्त रहता है और कपड़ों जैसी मूल-रहित चीज़ों की परवाह नहीं कर सकता, हम चाहे उसे कितना ही दण्ड क्यों न दें। वह अपना जीवन संग्राम नहीं छोड़ता। यदि बाल पालन-पोषण का उत्तरदायित्व अच्छी तरह निभाना हो तो हमें अशिक्षितता और लोभ से ऊपर होना होगा। हम जो बच्चों के लिए अधिक से अधिक धन छोड़ जाना चाहते हैं, बालक के कपड़े ख़राब करने पर या उसके गिलास तोड़ने पर आग बबूला हो जाते है। कारण यह है कि हम इन चीज़ों की कीमत तो समझते हैं परन्तु बालक की स्वयं क्रियाओं का उसके मन के विकास में क्या महत्व है नहीं समझते। हम यह नहीं समझते कि हम बालक को स्वयं क्रियाओं से वंचित रखकर उसके मनको रोगी बना देते हैं। हम बालक के जीवन के रोगों से अन्धे हैं। उसे मनके लिहाज़ से लंगड़ा लूला करके धन धरती की बैसाखी देना चाहते हैं, भला यह कौनसी अक्लमन्दी है? परन्तु बाल अशिक्षित और लोभी की यही अक्ल होती है। धन का लोभी जिसने आखिरकार अपने सारे पैसे स्त्री और बच्चों को ही दे जाने हैं, वह इन दोनों को ही पैसों से तंग रखता है।

बालक की स्वयं क्रियाओं की सामग्री ऐसी होनी चाहिए कि जिसे वह अपनी इच्छानुसार ढाल सके। पुन: यह सामग्री ऐसी होनी चाहिए कि जो इस की सम्बन्ध में गतियों को पूर्ण करती हो। बालक स्वयं अपने बटन बन्द करना चाहता है। इस गति में उसकी रुची है। यदि बालक को ऐसा फ्रेम दिया जाये कि जिस पर बटन लगे हों और वह उन्हें खोल सके और बन्द कर सके तो बालक के विकास में हम सहायक होंगे। इसी प्रकार बालक अपने बाल बनाना चाहता है। नहाना चाहता है। हम उसे यह गतियां नहीं करने देते वह उनमें अधिक समय लेता है और हम यही काम झटपट कर सकते हैं। इस लिए हम बालक को काम नहीं करने देते और बालक की देरी पर क्रोधित हो जाते हैं। हमने यदि बालविकास में सहायक होना है तो हमें यह समझ कर कि बालक की गति हमारे से भिन्न है हमें अपने सामाजिक प्रोग्राम में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना पड़ेगा।

हमारी आधुनिक सभ्यता में बालक की मांगों के लिए कोई स्थान नहीं।

हमारा जीवन प्रौढ़ समाज की मांगों से इतना घिरा हुआ है कि हमें बालक की ओर ध्यान देने के लिए समय नहीं। हमारे दिन के अगणित व्यवसाय होते हैं। यह व्यवसाय प्रौढ़ के काम की गति के अनुसार नियुक्त हुए हैं बालक के काम की गति का कोई ध्यान नहीं रखा गया। इसलिए हम बालक की गतियों को रद्द करके उसके स्थान पर उसके अधिकार का अपहरण कर लेते है। माता मॉण्टेसोरी की मांग यह है कि अब तक प्रौढ़ समाज, प्रौढ़ समाज की सुविधाओं को ही लेकर बनी हुई है। अब समय आ गया है कि प्रौढ़ समाज बालक की सुविधाओं को लेकर भी समाज के रीति रिवाज और कार्य-क्रम को बनाये। बालक की मांगों को मुख्य रखकर ही व्यवसाय की मांगों और समाज की मांगों का विचार किया जावे। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि बालक के पालन पोषण का काम उतना ही समाज और राजनीति के लिए आवश्यक है जितना दफ़तर का और व्यापार का काम। प्रत्येक परिवार को एक शिक्षा केन्द्र समझना चाहिए जहां राष्ट्र के बच्चे बढ़कर नया समाज बनायेंगे। माता पिता को पालन पोषण के काम का उसी तरह से मौलिक महत्व स्वीकार करना चाहिये जैसे दफ्तर और व्यापार के काम को। इसलिए माता पिता को इस काम के लिए अपने नैतिक कार्यक्रम में स्थान देना चाहिये।

दूसरा कारण जिससे हम बालक को स्वयं बाल बनाने जैसी गतियां नहीं करने देते वह यह है कि बालक का काम सामाजिक आदर्शों से तुच्छ होता है। बालक की अपनी कंघी की हुई, माता की कंघी की हुई से कहीं कम अच्छी होती है। और कई बार न कंघी के बराबर होती है। माता पिता बालक की ग.त को बालक के आदर्श और मांगों के अनुसार नहीं देखते, वह तो प्रौढ़ समाज की मांगानुसार उसे जांचते हैं। और उसे उन आदर्शों से रही पाकर बालक की गतियों को रोकते हैं। उन्हें यह नहीं पता लगता कि बालक के लिए अच्छी कंघी इतनी आवश्यक नहीं जितना स्वयं कंघी करना आव-श्यक है। वह तो बालक को खिलौना समझते हैं जिस पर वह समाज में गौरव कर सकें। बालक की अच्छी कंघी इसलिये नहीं की जाती कि इससे बालक को सुख मिलेगा या प्रसन्नता होगी अपितु इसलिए कि यह हमारे आदर्श के अनुसार है और हमारे पड़ौस वाले हमारे पालन पोषण की प्रशंसा करेंगे कि बालक को कितना साफ़ सुथरा रखा हुआ है। यदि बालक बुत होता तो यह सब कुछ उचित था परन्तु बालक तो विकासमय व्यक्ति है। उसको तो

बढ़ना है। और उसके बढ़ने की विधि इस प्रकार की गतियों में हैं। इसलिए बालक के लिए हमारे यह प्रेम अक्षम्य कठोरताएं हैं। जिसको भूख लगी हो उसके आगे सोना रख देना प्रेम नहीं, कठोर हँसी है। यदि हमको बालक के मित्र बनना हो तो हमें अपनी वृति में क्रान्तिजनक परिवर्तन लाना पड़ेगा। हमें सामाजिक आदर्शों के स्थान पर बाल आदर्श से बालक की गतियों को देखना, समझना और सराहना पड़ेगा। समाज को केन्द्र बनाने के स्थान पर बालक को केन्द्र बनाना पड़ेगा। ऐसे मानसिक वातावरण में ही बालक स्वतन्त्रता से अपने मन और ढंग के अनुसार मन को विकसित कर सकता है।

संक्षेप में बालक अपने सम्बन्ध में जो जो गतियां करना चाहे, उसे करने देना चाहिए। यह तब ही सम्भव है जब हम अपने काम के प्रोग्राम के अनुसार बालक के काम को, उसकी गतियों के अनुसार स्थान दें, बालक के काम को अपने आत्म केन्द्रित या समाज केन्द्रित आदर्शों के स्थान पर बाल दृश्य से समझें और सहरायें। इसके अतिरिक्त बालक के काम करने के लिए विशेष वातावरण उपस्थित करना चाहिये। यदि घर में ज़मीन हो तो बालक को एक क्यारी दे देनी चाहिए जिसको वह अपनी इच्छानुसार ठीक कर सके, बनावट दे सके, बो सके, पानी दे सके। इस काम के लिए उसे छोटी-छोटी खुरपियां छोटे छोटे फावड़े देने चाहिएं। उसे भिन्न भिन्न प्रकार के बीज दिखलाने चाहियें ताकि वह उनके रंग रूप और स्वभाव की परख कर सके। यदि ज़मीन न हो तो लकड़ी का चौड़ा खोखा, जिसमें मिट्टी भरने से क्यारी बन जावे दे देना चाहिए और प्रत्येक बालक को अलग अलग क्यारी या अलग अलग खोखे दे देने चाहियें। माता-पिता को इनके सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिये ताकि वह बालक के प्रश्नों का उत्तर दे सकें। और बालक के चाहने पर उसे जीवन ज्ञान के पाने में सहायक बन सकें।

बालक को पालतू जानवरों का भी वातावरण देना चाहिये। बिल्ली, कुत्ता, मुरग़ी, ख़रगोश आदि के छोटे छोटे बच्चे बड़ी रोचक और बाल विकास सामग्री हैं। बच्चे इनके व्यवहार के अध्ययन में विशेष रुचि अनुभव करते हैं, उन्हें खिलाने, पिलाने में विशेष ध्यान देते हैं। यह सब कुछ बालक की स्वाभाविक मांगें हैं और इन स्वाभाविक मांगों की तृप्ति बालक के लिए आवश्यक है।

घर में छोटी छोटी मेज़ें और कुर्सियां भी होनी चाहिएं जिन्हें बालक स्वयं उठा सकें और अपनी इच्छानुसार जहां चाहें रख सकें। इसी प्रकार उसे छोटी अलमारियां देनी चाहिएं जिनमें वह अपने कपड़े आप रख सकें। खूँटियां भी इतनी नीची होनी चाहियें कि जिन पर बालक अपने आप कपड़े टांग सके। मकानों की बनावट में केवल प्रौढ़ की सुविधाओं का ही विचार नहीं करना चाहिये अपितु बालक की भी मांगों का इसके नियुक्ति में अधिकांश भाग होना चाहिये।

बालक के लिये विशेष सामग्री चाहिये जिसमें वह मस्त रह कर अपना विकास कर सके। इस सामग्री का वर्णन हम अगले भाग में देंगे। यह सामग्री तीन से छः वर्ष तक के बालकों के लिए है क्योंकि साधारण परिवार में साधारणतः छः वर्ष के बाद स्कूल जाते हैं। इसलिए सामग्री का घर में उपयोगी प्रयोग ही हो सकता है। इस सामग्री का ज्ञान और प्रयोग बालक के विकास का मुख्य शिल्पकार है।

सारांश

शिशु जब बालक हो जाता है अर्थात् चलना फिरना आरम्भ कर देता है तो उसके लिए माता पिता को घर में दो प्रकार का वातावरण उपस्थित करना है।

क—मानसिक वातावरण।

(१) बालक के चीज़ें छूने, उठाने, खोलने, जोड़ने आदि की क्रियाओं का महत्व समझकर उसकी ऐसी क्रियाओं के प्रति रोष पर काबू पाना चाहिये। ऐसी क्रियाओं के प्रति सहन शीलता दिखानी चाहिये।

(२) बालक की मिट्टी, पानी और चीज़ों के साथ क्रियाओं का उतना ही मौलिक महत्व समझना चाहिये जितना हम प्रौढ़ अपने सामाजिक तथा व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं का समझते हैं।

(३) बालक के पालन पोषण को उसी प्रकार गम्भीर स्थान देना चाहिए जैसे हम अपने व्यवसाय को देते हैं। अब तक हम बालक के लिए आर्थिक सुविधाएं उपस्थित करने में अपने कर्तव्य की पूर्ति समझते हैं।

(४) हम अपने मनोरंजक सामाजिक कार्यक्रम में बालक के साथ मनो-रंजक प्रोग्राम को सम्मिलित करें। आजकल हमारी प्रौढ़ मनोरंजक-सामाजिक प्रोग्राम में बच्चों का नाम-मात्र स्थान है।

ख—शारीरिक वातावरण।

(१) घर में बालकों को छोटी छोटी क्यारियां, छोटी छोटी खुरपियां, छोटे छोटे फ़ुवारे और फावड़े देने चाहियें। इन क्यारियों की देखभाल बालकों को ही करनी देनी चाहिए।

(२) कम से कम एक बच्चे देने वाला पालतू पशु जैसे कुतिया, बिल्ली, ख़रगोशनी, मुर्ग़ी इत्यादि को पालना चाहिए जिनकी देखभाल में बालक भाग ले सकें।

(३) घर के बनाने में बालक की स्वयं क्रियाओं के साधनों के लिए जगह अवश्य नियुक्त होनी चाहिए।

(४) मकान का उपकरण अर्थात मेज़, कुर्सी, खूंटियां, बरतन, बालटियां, जग आदि बालक की विकास स्थिति अनुसार होनी चाहिए।

———

१३

माण्टेसोरी विधि का इतिहास

मॉण्टेसोरी विधि का विकास १८९७ से आरम्भ होता है जब माता माण्टेसोरी ने रोम के विश्वविद्यालय की मनोवैज्ञानिक चिकित्सालय में उप-डाक्टर के रूप में काम करना शुरू किया। उस स्थान पर उन्हें पागलखाने के रोगियों का अध्ययन करना पड़ता था और चिकित्सा योग्य रोगियों को चिकित्सालय में लाना पड़ता था। उस पागलखाने में मूर्ख वयस्क भी रखे हुए थे। माता मॉण्टेसोरी इन बच्चों में रुचि लेने लगीं। इस समय वैज्ञानिक दुनिया में यह विचार था कि इन दुःखी और अभागे बालकों की दवा-दारू ही केवल यथेष्ट नहीं अपितु इनकी चिकित्सा में शिक्षा विधि का भी प्रयोग करना चाहिये। माता मॉण्टेसोरी ने उस समय अभागे बालकों की प्रचलित शिक्षा विधि का अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात और बालकों के सम्पर्क में आने पर उन्हें यह बुद्धि चमत्कार हुआ कि बुद्धि की मन्दता की चिकित्सा मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक है, दवा दारू की समस्या नहीं। माता मॉण्टेसोरी की इस नई सचाई से उनके सह कर्मचारी डाक्टर सहमत न थे। वैद्यों की सभाओं में भी मुख्यतः दवा दारू द्वारा बुद्धि की मन्दता के इलाज का प्रचार था। माता मॉण्टेसोरी ने १८९८ में शिक्षा विधियों की काग्रेस में अपने विश्वास की घोषणा की और उसका वर्णन किया। उनके नये विचारों की डाक्टरों और शिशू शिक्षिकों में धूम मच गई। इस समय उनके पुराने अध्यापक गाईडो बैसिली ने, जो राजनीति शिक्षा मन्त्री बन चुके थे, उन्हें बुलाया और उनको मन्द बुद्धि बालकों के अध्यापकों को शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया। इस केन्द्र ने जल्दी ही एक पाठशाला का रूप धारण किया जिसमें ऐसे बच्चे रखे गये जिन्हें और स्कूलों में अध्यापकों ने निराश होकर शिक्षा के अयोग्य समझा था। माता माण्टेसोरी इस स्कूल में जहाँ एक ओर अध्यापकों को शिक्षा देती थीं वहाँ दूसरी ओर उन बालकों को शिक्षित करती थीं। स्कूल के उन दिनों में माता माण्टेसोरी ने लन्दन और पैरिस की यात्रा की ताकि वह इन देशों में जो मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा की प्रचलित विधियां थीं उनका अध्ययन करें। उन्हें इन देशों में कोई संतोषजनक नतीजे

दिखाई न पड़े। परन्तु माता मॉण्टेसोरी की विधियों से बालकों में आश्चर्य-जनक परिवर्तन हुआ। उनके परिवर्तन द्वारा एक अलौकिक घटना यह हुई कि पागलखाने के मन्द बुद्धि बालक इतना लिखना पढ़ना सीख गये कि वह साधारण स्कूल के इम्तहान में साधारण बालकों के साथ परीक्षा में बैठ कर उन के ही समान परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। माता मॉण्टेसोरी की इस आलौकिक घटना से जहाँ सर्व जनता में धूम मच गई, वहाँ स्वयं उनको अत्यन्त दुःख हुआ। क्योंकि माता मॉण्टेसोरी ने यह अनुभव किया कि यदि यह मन्द-बुद्धि बालक साधारण बालकों का मुकाबला कर सकते हैं, तो इस का अभिप्राय यह है कि साधारण बालक की शिक्षा-विधि उनके विकास के स्थान पर उनका मानसिक पतन करती है क्योंकि मन्द बुद्धि बालक और साधारण बुद्धि वाले बालकों की कोई तुलना ही नहीं। अधरंगी बांह और स्वस्थ्य शक्तिवान बांह का क्या मुकाबला है? आरोगी बांह और टूटी हुई बांह की तो तुलना है। प्रचलित शिक्षा साधारण स्वस्थ्य बालक को उसके मन का विकास करने के स्थान पर उसके अंगों को तोड़-मोड़ देती है और इसलिये मन्द बुद्धि बालक साधारण बालक का मुकाबला कर सकते हैं। इस बात ने माता माण्टेसरी के दिल और दिमाग पर काबू पा लिया कि साधारण बालकों की कैसे मोक्ष हो ताकि वह अपनी मानसिक शक्तियों के अनुसार विकसित हो कर अपनी स्वाभाविक पूर्णता और सुन्दरता को पहुँच सकें? इन्होंने यह भी परिणाम निकाला कि मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा साधारण बालकों की शिक्षा विधियों से कहींअधिक मानसिक निर्माण के नियम पर स्थापित है। उनका यह विश्वास दृढ़ होता गया कि जो विधि सामग्री मानसिक शक्ति हीन बालकों में सफल हुई है वह साधारण बालकों के विकास में आलौकिक रूप से सफल होगी! क्योंकि स्वस्थ्य होने के नियम दोनों के लिए समान हैं।

माता माण्टेसोरी लिखती हैं :—"मुझे यह नया विश्वास उत्साहित करने लगा। यद्यपि मुझे यह पता नहीं था, कि मैं अपने विश्वास की सच्चाई का कभी भी निरीक्षण कर सकूंगी। तथापि अपना सब काम धन्धा छोड़ कर इस विश्वासको बढ़ाने और गहरा करने में लग गई यह सब कुछ ऐसा था, कि मैं एक अज्ञात मिशन के लिए खड़ी हो रही थी।

अब माता मॉण्टेसोरी ने इन मन्द बुद्धि बालकों की संस्था में काम छोड़ दिया। और रोम के विश्व विद्यालय में प्रयोगिक मनोविज्ञान के अध्ययन के

लिए विद्यार्थी बन कर दाखिल हो गईं ।

यहां उन्होंने विधि पूर्वक मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा के विशेषज्ञों की पुस्तकों का अध्ययन शुरू किया। मन्द बुद्धि बालकों का अध्ययन १८३७ में फ्रांसीसी क्रान्ती के समय डाक्टर पीनल ने आरम्भ किया था। उन्होंने बहरेपन के रोग को शिक्षा द्वारा ठीक करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने प्रयोग पैरा की बहरे और गूंगों के लिये स्थापित संस्था में किए। और उन्होंने सचमुच कम सुनने वालों को साफ़ २ सुनने वाला बना दिया। इसके पश्चात उन्होंने यह ही शिक्षा चिकित्सा गूंगों को ठीक करने में भी प्रयोग की। उनके विद्यार्थी इटार्ड ने इस विधि को आगे बढ़ाया। यह पहला शिक्षक था जिसने यह प्रथा डाली कि ऐसे मन्द बुद्धि बालकों के जीवन और व्यवहार का उसी प्रकार निरीक्षण किया जावे जिस प्रकार शरीर रोगियों का निरीक्षण किया जाता है। इटार्ड ने अपने अत्यन्त रोचक और वर्णनीय रूप में अपने शिक्षा प्रयोगों और अनुभवों पर लिखा है। वह ही सच्चे अर्थों में पहले प्रयोगी मनोवैज्ञानिक होने की उपाधि रखते हैं। परन्तु एडवर्ड सेगुइन ने मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा की पूर्ण विधि बनाई। उन्होंने इटार्ड के प्रयोगों को अपनी नींव बनाया और दस वर्ष तक पैरिस की एक संस्था में मन्द बुद्धि बालकों पर प्रयोगों के पश्चात एक ६०० पृष्ठ की "मन्द बुद्धि की धार्मिक तथा शारीरिक चिकित्सा" नाम की पुस्तक प्रकाशित की। इसके पश्चात वह अमरीका चले गये, और वहां मन्द बुद्धि बालकों के लिए कई संस्थाएँ स्थापित कीं। फिर २० वर्ष के प्रयोगों के बाद उन्होंने एक और "बुद्धि की मन्दता और इसकी शारीरिक विधि द्वारा चिकित्सा" शीर्षक नाम की पुस्तक लिखी। यह पुस्तक अंग्रेजी में थी जैसे पहली पुस्तक फ्रैंच भाषा में थी।

माता मॉण्टेसोरी ने बुद्धिमन्दता के विशेषज्ञ अर्थात् इटार्ड और सेगूइन की पुस्तकों का केवल अध्ययन ही नहीं किया, अपितु उन्हें अपने गहरे विचार और उत्साह का स्रोत बनाया। उन्होंने इन नेताओं के इन विचारों को ही नहीं इन विचारों की आत्मा को अपनाने का गहरा संग्राम किया, उन्होंने सेगूइन की ६०० पृष्ठ की पुस्तक का इटैलियन भाषा में अनुवाद करना आरम्भ किया और यह अनुवाद अपने हाथों से लिखा ताकि प्रत्येक शब्द की महत्वता और आत्मा प्रकट हो सके। यह पुस्तक अभी समाप्त ही की थी, कि उन्हें सेगूइन की अंग्रेज़ी में लिखी पुस्तक भी मिल गई। इस

पुस्तक का भी माता मॉण्टेसोरी ने एक अंग्रेज़ मित्र की सहायता से अनुवाद किया।

इन पुस्तकों के अनुवाद से माता मॉण्टेसोरी बहुत ही प्रभावित हुई। उन्हें शिक्षा और पाठशालाओं में क्रान्ति की महत्वता का गहरा अनुभव हुआ, और उन्होंने और अधिक प्रयोगों के करने की ठान ली। १६०६ के अन्त में उनके प्रयोगों का द्वार खुला। रोम में एक सभा थी, जिसका उद्देश्य साधारण मज़दूर जनता के लिये अच्छी २ इमारतें बानना था। इस सभा के कार्य-कर्ताओं के लिये एक यह समस्या थी, कि इन मकानों को बालकों के ख़राब करने से कैसे सुरक्षित किया जाये। इस सभा के मुख्य प्रबन्ध समिति संचालक को एक बहुत अच्छी बात सूझी कि मज़दूरों के परिवारों के तीन से सात साल के बच्चों के लिए एक बड़ा कमरा बना दिया जाय, जिसमें इन सब बालकों को रखा जाय और एक अध्यापिका इनके सम्भालने के लिये नियुक्त की जाय। इस सभा की चार सौ बस्तियां थीं और टैलियो ने यह योजना बनाई कि प्रत्येक बस्ती में एक ऐसा कमरा और एक अध्यापिका नियुक्त की जाय। इस काम को पूरा करने के लिये माता मॉण्टेसोरी को निमन्त्रण दिया। माता मॉण्टेसोरी ने इसे अपने लिए सुनहरी अवसर समझा और काम करना आरम्भ किया। इन्होंने मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा सामग्री और विधि को कुछ बढ़ा कर और सुधार कर इन नए स्कूलों के बालकों की शिक्षा में प्रयोग किया। इनके प्रयोग से इन बालकों में मन्दबुद्धि बालकों की अपेक्षा शिक्षा सामग्री और विधि कहीं अधिक अलौकिक प्रमाणित हुई। एक दृष्टि से वह बालक जिनमें विकसित होने की शक्ति नहीं है, और वह बालक जो विकसित नहीं हुए, एक जैसे ही है। मन्दबुद्धि बालक जो बोल नहीं सकते और दूसरे साधारण बालक जो बोलने की आयु में नहीं पहुँचे वह एक जैसे ही हैं। इसी प्रकार वह मन्दबुद्धि बालक जो ठीक तरह चल नहीं सकते, जो अपने कपड़ों के बटन खोल व लगा नहीं सकते, इनकी अवस्था अब स्वस्थ छोटे बालकों की अवस्था सी है, जो अभी ऐसी क्रियाएं करने की आयु में नहीं पहुँचे। पुनः वह मन्दबुद्धि बालक जो अपने ध्यान को स्थिर नहीं रख सकते, और वह स्वस्थ बालक जो ध्यान टिकाने की आयु में नहीं पहुंचे एक ही दशा में हैं। अनेक मन्दबुद्धि बालकों के दोष और स्वस्थ परन्तु नन्हें बालकों का स्वभाव एक समान है। यदि वह सामग्री और विधि जो मन्दबुद्धि

बालकों के विकसित होने में सहायक हैं, वह नन्हें परन्तु अविकसित बालकों के लिए अवश्य अलौकिक सिद्ध होगी।

और हुआ भी ऐसे ही। माता मॉण्टेसोरी के प्रयोगों ने बालकों की शिक्षा में नया युग आरम्भ किया। माता मॉण्टेसोरी के स्कूल ने विश्व महत्वता धारण की। बड़े २ देशों के बड़े २ शिक्षकों ने इस शिक्षा तीर्थ स्थान की यात्रा की, और बाल जीवन के नये विकास विधि के दैनिक अलौकिक जीवन घटनाओं को अपनी आंखों से देख कर उसके सम्बन्ध में पुस्तकें लिखीं। आज सब देशों के शिक्षकों ने मॉण्टेसोरी सामग्री और विधि को कम या अधिक मात्रा में अपनाया है। मॉण्टेसोरी सामग्री और विधि क्या है? इसका वर्णन हम आगे जाकर करेंगे।

सारांश

संक्षेप में मॉण्टेसोरी सामग्री के रोचक विकास की मुख्य घटनाएं यह हैं—

(१) १८९७ ई० में माता मॉण्टेसोरी ने मन्द बुद्धि बालकों को शिक्षा द्वारा उन्नत करना आरम्भ किया और इसमें उन्हें बहुत सफलता हुई।

(२) १८९८ ई० में उन्होंने अपनी इस सफलता के आधार पर वैद्य सभा में घोषणा की और मन्द बुद्धि बालकों के अध्यापकों की ट्रेनिंग संस्था का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया।

(३) इसके पश्चात उन्होंने फ्रांस के डाक्टर पीनल, ईटार्ड और सेगूइन के गूंगे और बहरे बालकों पर प्रयोगों का वर्षों तक अध्ययन और प्रयोग किया।

(४) १९०६ में माता मॉण्टेसोरी ने मन्द बुद्धि बालकों पर प्रयोग की हुई सामग्री और विधि को साधारण बालकों की शिक्षा प्रणाली बनाया। उन्होंने यह सत्य अनुभव किया कि मन्द बुद्धि बालक और अविकसित बालक एक ही मानसिक स्थिति में हैं इसलिये जो सामग्री और विधि मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा के लिए सफल और उपयोगी है वह अविकसित बालकों के लिए भी हितकर प्रमाणित होती है। माता मॉण्टेसोरी की विशेषता इस सत्य के देखने और मन्द बुद्धि बालकों पर प्रचलित विधि में सुधार करके उसे साधारण बच्चों की विधि बनाने में है।

१४

अध्यापक का मानसिक उपकरण

माता मॉण्टेसोरी को सेगूईन की शिक्षा सामग्री द्वारा मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा में असाधारण सफलता हुई।

माता मॉण्टेसोरी ने इसका कारण खोजा। उन्हें यह पता लगा कि बालक की आत्मा को जागृत और विकसित करने के लिये केवल शिक्षा सामग्री ही यथेष्ठ नहीं, अपितु अध्यापक में आत्मिक वृति भी आवश्यक है। विशेष आत्मिक वृत्ति के बिना शिक्षा सामग्री बाल विकास में पर्याप्त नहीं। उन्होंने अपनी वृत्ति की इन असफ़ल अध्यापकों की वृत्ति से तुलना की और उन्हें निम्न अनुभव हुए—

(१) उनकी वृत्ति वैज्ञानिकों की तरह पूर्णतया नम्रता की थी। एक एक वैज्ञानिक प्रकृति की छोटी से छोटी और निकृष्ट से निकृष्ट घटना को जानने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगा देने, अपने को पूर्ण एकाग्रचित्त करने, अपने सारे समय को लगा देने में अपनी जीवन सफ़लता समझता है। उदाहरणार्थ—एक वैज्ञानिक कीटाणुओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्ति के लिए अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। वैज्ञानिक मल जैसे निकृष्ट पदार्थ के सम्बन्ध में भी विशेष निर्णयी बनने में संकोच नहीं करता। पूरे उत्साह के साथ उसके अध्ययन में अपना अमूल्य समय ख़र्च करता है। यह सब कुछ इसलिये है कि वैज्ञानिक अपनी अज्ञानता से परिचित है और सचाई का प्रेमी है। वह इसमें कोई हीनता नहीं समझता कि उसकी खोज की वस्तु बहुत तुच्छ है। वह तो उसके जानने में लीन हो जाता है। माता मॉण्टेसोरी ने भी मन्द बुद्धि बालकों के लिए अत्यन्त सरल वृत्ति धारण की। उसके विपरीत उन्होंने देखा कि अन्य असफ़ल अध्यापकों में यह नम्रता न थी। वह इन मन्द बुद्धि तथा साधारण बालकों को तुच्छ समझते थे। और अपने आत्म केन्द्रित प्रेम के कारण उन्हें यह रुचिकर न था कि वह बालकों की मानसिक सतह तक आवें। वह इसमें अपनी हीनता समझते थे। इसलिए वह बालक की आत्मा को जानने और

जगाने में अयोग्य थे। भला कौनसा वैज्ञानिक अपने विषय के सम्बन्ध में सत्य जान सकता है जो अपने विषय से सम्बन्धित होने में हीनता समझे ?

दूसरी वैज्ञानिक वृति जो माता मॉण्टेसोरी ने अपने आप में पाई और दूसरों को जिससे शून्य पाया; वह था प्रेम। वह वैज्ञानिक नहीं जो यह न जानता हो कि प्रयोगशाला के यंत्रों को प्रयोग में कैसे जमाया जाय ? साधारणतः वैज्ञानिक के नीचे काम करने वालों को ऐसे काम में अधिक और विशेष योग्यता और सुविधा होती है, परन्तु वैज्ञानिक और उसके नीचे काम करने वालों में आकाश पाताल का अन्तर है। वैज्ञानिक सत्य जानने का प्रेमी है जिससे उसके नीचे काम करने वाले शून्य हैं। वैज्ञानिक तो वह तपस्वी है जो सत्य के लिए स्वयं को भूला हुआ है। जिसे खाने की होश नहीं और न अपने कपड़ों की परवाह है, जो अपने आप को ही भूल चुका है, जो खुर्दबीन में बरसों तक देखते २ खुशी २ अन्धा हो गया है, जिसने स्वयं तपेदिक के घातक कीटाणुओं को अपने शरीर में भरती कर लिया है, जो ऐसी वस्तुएं मुंह में डालने को तैयार है जिससे तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो सकती है। जो ऐसे बारूद का प्रयोग करता है जो उसके शरीर को पल भर में छिन्न भिन्न करके नेस्तोनाबूद कर देगा। यह है वैज्ञानिक आत्मा जिसका अपने जीवन से भी अधिक प्रेम विषय के ज्ञान में है।

माता मॉण्टेसोरी ने देखा कि जहां उनमें इन बच्चों के प्रति अत्यन्त प्रेम था वहा असफल अध्यापकों में यह वृत्ति अनुपस्थित थी।

माता मॉण्टेसोरी की तीसरी वैज्ञानिक वृत्ति निरीक्षण की विशेष दृष्टि थी, जो दूसरे अध्यापकों में नहीं थी। हम जानते हैं कि जो कुछ एक वैज्ञानिक देख सकता है वह साधारण व्यक्तियों को नहीं दिखाई देता। उदाहरणार्थः—जब साधारण व्यक्ति को कोई वैज्ञानिक दूरबीन द्वारा नक्षत्रों को या खुर्दबीन के नीचे एक सैल के क्षुद्र अंश को दिखाना चाहता है तो साधारण व्यक्ति नहीं देख सकता ! किसी वस्तु को देखने के लिए विशेष अभ्यास चाहिए, विशेष रुचि चाहिए, तथा अपने आप पर विशेषानुशासन चाहिए। यदि हम यह समझें कि हम वस्तु जानने के योग्य ही नहीं हैं या उसके सम्बन्ध में हम सब कुछ जानते हैं तो भला हम निरीक्षणके शासन की गति में व्यस्त कैसे हो सकते हैं ?

चौथी वैज्ञानिक वृत्ति जिसमें माता मॉण्टेसोरी ने अपने को असफल

अध्यापकों से भिन्न पाया वह थी धैर्य ! वैज्ञानिक वही हो सकता है जिसमें। अथाह धैर्य हो। एक २ गणित ज्योतिषी अपनी दूरबीन को केन्द्रित करने में घण्टों और रातों खर्च करने को तैयार हो जाता है। उसके लिए और कोई विषय इतना महत्व नहीं रखता, जितना उसका अपना प्रयोग रखता है। उसका विषय ही उसकी शक्तियों, उसका समय, उसकी रुचियों और वृत्तियों का केन्द्र है। उसका यह अथाह धैर्य हम साधारण व्यक्तियों को क्रोधित तक कर देगा, किन्तु वैज्ञानिक के लिए यह स्वयं स्वीकृत मिशन का भाग है।

माता मॉण्टेसोरी ने अपने आप में और अन्य असफल अध्यापकों में यह भिन्नता देखी कि उनमें बालक की आत्मा के लिए श्रद्धा थी जब कि दूसरों में न थी। वैज्ञानिक अपने विषय को तो प्यार कर सकता है पर श्रद्धा नहीं दे सकता, क्योंकि उसका विषय जड़ पदार्थ जैसे नक्षत्रों, मेघ, पत्थर, जल आदि या जड़ शक्ति जैसे विद्युत शक्ति, रसायनिक शक्ति या कीटाणुओं आदि का अध्ययन होता है। यह सब विषय उसकी अपनी आत्म शक्ति की तुलना में मूल्यवान नहीं। यह वस्तुएं और शक्तियां उसके आत्मिक जीवन और विशेषता से पूर्णतः भिन्न हैं। परन्तु बालक के अध्ययन में यह बात नहीं। अध्यापक-अध्यापिका का विषय बालक की आत्मा है। इसीलिए उसका अध्ययन किसी ऐसी वस्तु के साथ लीन होता है जिसका वह स्वयं भाग है। बालक की आत्मा का अध्ययन उस असीमित आत्मिक जीवन का अध्ययन है जिसका अध्यापक स्वयं एक तुच्छ भाग है। बालक के अध्ययन में अध्यापक सृष्टि की महान् उत्तम शक्ति के दर्शन करता है। इसका ज्ञान उसका अपना आत्म ज्ञान है और यही उसे आत्मिक ज्ञान दे सकता है। इसके साथ मेल में आने से ही उसका आत्मिक मोक्ष है, क्योंकि इसमें लीन हो जाने से वह विश्व की आत्म शक्ति के साथ लीन हो जाता है।

संक्षेप में माता मॉण्टेसोरी की अध्यापकों से यह मांग है कि वह वैज्ञानिकों के समान नम्रता, निष्पक्ष-निरीक्षण अथाह धैर्य और स्वयं को भुलाने वाले प्रेम को बालक के प्रति विकसित करें। और धर्म योगियों के समान श्रद्धा विकसित करे। बालक के संबन्ध में यह वृतियां ही बाल मन विकास की स्वतंत्र परिस्थितियां हैं। यह ही मॉण्टेसोरी अध्यापक का सच्चा उपकरण है। इसको विकसित करके ही वह मॉण्टेसोरी सामग्री का ठीक प्रयोग कर सकता है। इस सामग्री का हम अगले अध्याय में वर्णन करेंगे।

सारांश

मॉण्टेसोरी विधि की सफलता मॉण्टेसोरी सामग्री के प्रयोग में नहीं। मॉण्टेसोरी सामग्री मॉण्टेसोरी के जन्म से पहले ही मन्द बुद्धि बालकों के स्कूलों में प्रयोग में लाई जा रही थी। मॉण्टेसोरी विधि की सफलता मुख्य रूप से मॉण्टेसोरी अध्यापक पर है। मॉण्टेसोरी अध्यापक की विशेषता विधि कला जानने में ही नहीं उसकी विशेषता बालक के प्रति विशेष वृत्तियों के विकास में है और वह यह हैं।

(१) नम्रता—अध्यापक बालक को तुच्छ वस्तु न समझे। रचनात्मक योग्यता रखने वाले बालकों के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानता को जानकर उसके प्रति नम्र रहे।

(२) बालक के प्रति प्रेम—अध्यापक को बालक के प्रति पवित्र प्रेम अवश्यम्भावी है। इसके बिना वह बालक को नहीं समझ सकता और न ही उसके विकास का अथक और अजय उत्साही विकासकर्ता बन सकता है।

(३) निष्पक्ष निरीक्षण—अध्यापक का अध्ययन विषय प्रत्येक बालक है जिसे उसने शिक्षित करना है।

(४) अथाह धैर्य—अध्यापक को बालक के समझने और शिक्षित करने में अथाह धैर्य बिना सफलता नहीं हो सकती।

(५) श्रद्धा—अध्यापक के लिए बालक के प्रति श्रद्धा दृष्टि आवश्यक मानसिक उपकरण है।

———

१५

स्कूल का भवन

मॉण्टेसोरी स्कूल के अध्यापक के लिए वैज्ञानिक की तरह प्रयोगशाला की आवश्यकता है। प्रयोगशाला विषय के स्वभाव को जानने के लिए बनाई जाती है। यदि विषय अध्ययन के लिए रोशनी की आवश्यकता होती है तो प्रयोगशाला की दीवारें कांच और शीशे की बना दी जाती हैं। यदि विषय अध्ययन के लिए पूर्ण अन्धकार की आवश्यकता होती है तो प्रयोगशाला इस विधि से बनाई जाती है कि उसमें बन्द कैमरे की तरह अँधेरा रहे। अतएव प्रयोगशाला वैज्ञानिक की सुविधा या रुचि को लेकर नहीं बनाई जाती तथापि विषय के अध्ययन की सच्ची परिस्थितियों के अनुसार बनाई जाती है ताकि विषय अनुकूल वातावरण पाकर अपने स्वभाव का चमत्कार दे सके। और इस चमत्कार से वैज्ञानिक को ज्योतिर्मान कर सके। वैज्ञानिक का काम विषय अध्ययन है। उसकी मांग विषय को उसके स्वाभाविक रूप में जानना है। वह विषय को कभी कुरूप अवस्था में देखना नहीं चाहेगा, क्योंकि इससे उसका वैज्ञानिक आदर्श पूरा नहीं होता। उदाहरणार्थ—यदि वैज्ञानिक को तितलियों के स्वभाव का अध्ययन करना है तो वह कभी भी मरी हुई तितलियों को स्वीकार नहीं करेगा, चाहे वह अत्यन्त ही सुन्दर क्यों न हों और कितने ही सुन्दर शीशे के आवरण में बन्द क्यों न हों, क्योंकि इस रूप में वह उसके अध्ययन के लिए पूर्णतः व्यर्थ है। तितलियों के सम्बन्ध में स्वाभाविक सची घटनाओं के जानने के लिए वैज्ञानिक को तितलियां ऐसी अवस्था और वातावरण में चाहिएं जिसमें वह अपनी स्वाभाविक गतियां कर सकें। यही परिस्थिति मॉण्टेसोरी अध्यापक की मांग है। उसका विशेष कर्तव्य बाल-अध्ययन है। यह तब ही सम्भव है जब कि बालक को ऐसी अवस्था और वातावरण दिया जाय जिसमें वह अपनी स्वाभाविक गतियां कर सके। ऐसे वातावरण की उपस्थिति की दो परिस्थितियां हैं। एक परिस्थिति अध्यापक की मानसिक वृत्तियां हैं जिनका अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर आये हैं। दूसरी परिस्थिति शारीरिक वातावरण की स्कूल-भवन और बालक की गतियों और विकास की सामग्री से समूहित है। इसका वर्णन इस अध्याय का उद्देश्य है। इस

वर्णन के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है कि इस सामग्री में यथायोग्य तथा यथासाध्य वातावरणानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। हमारे जैसे ग़रीब देश के प्रत्येक स्कूल में ऐसा उपकरण और भवन सम्भव नहीं इसलिए इसमें से जो कुछ वातावरणानुसार सम्भव हो उतना ही उपकरण अपनाया जाये।

मॉण्टेसोरी स्कूल के लिए माता मॉण्टेसोरी की यह मांगें हैं—

स्कूल में एक काफ़ी बड़ा कमरा होना चाहिए और इस कमरे के साथ एक बड़ा गुसलखाना, एक खाने का कमरा, एक कौमनरूम, एक दस्तकारी का कमरा, एक व्यायाम का कमरा और एक विश्राम का कमरा हो। यह भवन बालक की सुविधाओं को सामने रखकर बनानी चाहिए। इसके खिड़की, दरवाज़े ऐसे होने चाहिएं जिन्हें बालक सुविधा से खोल व बन्द कर सके। इन कमरों की चीज़ें हल्की होनी चाहिएं, इतनी हल्की कि बालक आसानी से हिला उठा सके और इनका रोग़न और रंग ऐसा होना चाहिए कि यह आसानी से धोए जा सकें। इन कमरों में छोटी छोटी मेजें भिन्न भिन्न रूपों और आकारों की होनी चाहिएं अर्थात् कुछ चौकोर, कुछ गोल, कुछ समकोणी, कुछ छोटी, कुछ बड़ी होनी चाहिएं। समकोणी मेजें अधिक अच्छी होती हैं क्योंकि इन पर दो तीन बच्चे इकट्ठे बैठ कर काम कर सकते हैं। छोटी छोटी लकड़ी की कुर्सियां इनके उपयुक्त होनी चाहिएं और हो सके तो पिली की बैंत वाली कुर्सियां और सोफ़े भी होने चाहिएं।

बड़े कमरे में जो बालकों की कार्यशाला है, मेज़ और कुर्सियों के अतिरिक्त दो और चीज़ अवश्य होनी चाहिए। एक तो बहुत लम्बी अलमारी, जिसके बड़े २ दरवाजे हों, लेकिन छत इतनी नीची हो कि बालक उस पर फूलदान इत्यादि रख सकें। इस अलमारी में वह सब शिक्षा सामग्री रखी जानी चाहिए जो बालक की इन्द्रिय और बुद्धि विकास के लिए आवश्यक है। यह सामग्री क्या क्या है उसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। दूसरी आवश्यक वस्तु दराज़ों वाली मेज़ है। प्रत्येक दराज़ के ख़ूबसूरत हत्था होना चाहिए जिसका रंग चमकदार और दराज़ के रंग के विपरीत हो। इस हत्थे के नीचे कार्ड के लिए फ्रेम बना हुआ होना चाहिए। प्रत्येक बालक को एक एक दराज़ दिया जावे और उसके दराज़ के कार्ड पर उसका नाम लिखा जावे। यह दराज बालक को अपनी निजी चीज़ों के रखने के लिए दिया जाता है।

इस कमरे की दीवारों पर श्यामपट लगाने चाहिएं और वह इतने नीचे हों कि बालक बड़ी आसानी से लिख सके। इसी प्रकार कमरे में निहायत प्रसन्नतादायक चित्र-कला सम्बधी तस्वीरें हों जो समय समय पर बदली जानी चाहिएं। तस्वीरों का विषय घर के सुन्दर दृश्य, पर्वतों के दृश्य होने चाहिएं, या फल फूल और ऐतिहासिक घटनायें होनी चाहिएं। इसके अतिरिक्त कमरे में शोभापूर्ण फूलदार पौदे भी होने चाहिएं। बालकों के लिए खूबसूरत और भिन्न भिन्न रंगों की जैसे लाल, नीली, हरी, भूरी, गुलाबी छोटी छोटी दरियां होनी चाहिएं जिन पर बालक बैठकर अपनी स्वयं शिक्षा की गतियां कर सके।

कौमन रूम की चीजें विशेषरूप से चित्रकला सम्बन्धी होनी चाहियें। इसमें छोटी छोटी खूबसूरत कुर्सियां और सोफ़े होने चाहिएं। इसके बीच वाली मेज पर रंगीन तस्वीरों के एलबम होने चाहिए जिन्हें देखकर बालक खुश हो सके और ज्ञान पा सके। इसी प्रकार इस मेज़ पर धैर्य्य सम्बन्धी खेल होने चाहिएं। ठोस रेखा गणित सम्बन्धी लकड़ी के टुकड़े होने चाहिए जिन्हं वह भिन्न भिन्न रूप दे सके। इस कमरे में छोटी छोटी वीणा होनी चाहिए। इस कमरे की दीवारों पर भी फ्रेमों में मढ़ी हुई तस्वीरें होनी चाहिएं और छोटे छोटे फूलदान रखे जाने चाहिएं। इस कमरे में प्रत्येक बालक का अपना छोटा सा गमला होना चाहिए जिसमें वह घर के अन्दर रखने वाले पौदों के बीज बो सके और स्वयं उसमें पानी दे सके।

खाने के कमरे का सामान निम्न रूप में होना चाहिए। उपरोक्त कमरों की तरह इसमें भी छोटी छोटी मेज़ और कुर्सियां होनी चाहिएं। अलमारियां नीची होनी चाहिए ताकि बालक स्वयं उनमें से भोजन सम्बन्धी वस्तुएं अर्थात प्लेटें, गिलास, चम्मच, मेजपोश, रुमाल आदि निकाल सके। बालक ने ही मेजपोश बिछाना है, प्लेट लगानी हैं, चम्मचें सजाने हैं, खाना बांटना है इसलिए खाने सम्बन्धी सब सामग्री उसकी पहुँच में होनी चाहिए। जो जो चीजें चीनी व कांच की हो सकती हैं वह ऐसी होनी चाहिएं ताकि बालक के तोड़ने पर उसे यह अनुभव हो सके कि उसकी ग़लतियों पर प्रभुत्वता नहीं हुई। चीनी और कांच की चीजों द्वारा ही बालक चीजों को सम्भाल कर और सुन्दर तरीके से उठाने की स्वयं शिक्षा के साधन कर सकता है। यदि उन्हें पीतल, जर्मन सिलवर इत्यादि धातु के बर्तन उठाने को दिये जावें तो बालक को अपने चीजों के हिलाने जुलाने के अक्खड़पन का कभी बोध न होगा।

शृंगार का कमरा—इस कमरे में प्रत्येक बालक की अपनी अलमारी या शैल्फ होता है जिसमें वह अपनी निजी चीजें रखता है। कमरे के केन्द्र में हाथ धोने वाली छोटी छोटी मेजें होनी चाहिएं जिन पर चिलमचियां लगी हों, साबुन तथा नाखून साफ़ करने का बुर्श रखा हो। दीवार के साथ छोटे छोटे सिंक बने हों जिनमें छोटे छोटे नलके हों जिनसे बालक पानी ले सकें। इसके अतिरिक्त कमरे में इतनी नीची खूंटियां होनी चाहिएं कि उन पर वह खुद ही कपड़े टांग सकें।

बालक के विश्राम का कमरा ऐसा होना चाहिए कि वह आवाज और रोशनी से सुरक्षित हो। यहां पर छोटे छोटे पलंग या लम्बी दरी होनी चाहिएं, जिस पर बालक अपनी इच्छानुसार सो सकें।

व्यायाम के कमरे में एक तारों की वाड़ होनी चाहिए जिसकी ऊपर वाली तार पर हाथ रखकर और निचली तार पर पैर रखकर बालक चल सकें। व्यायाम के कमरे की दूसरी चीज झूला होनी चाहिए। झूले की तख्ती इतनी चौड़ी होनी चाहिए कि बालक के बैठने पर उसकी टांगें उस पर पूरी आ जावें नीचे न लटकें, यह झूला दीवार से दूर होना चाहिए। दीवार के कुछ आगे एक इतना ऊंचा बोर्ड लगा देना चाहिए कि जब बालक का झूला उधर जावे तो वह अपने पांवों से धक्का लगा कर झूल सके। तीसरी चीज़ एक नीचा लकड़ी का बना हुआ प्लेटफ़ार्म हो। जिस पर कई लाइनें लगी हुई हों। इन लाईनों के द्वारा बालक के कूदने को नापा जा सकता है। इस लकड़ी के प्लेटफार्म के साथ एक सीढ़ी होती है। बालक पहले, पहली सीढ़ी से फिर दूसरी सीढ़ी से और इस तरह आखिरी सीढ़ी तक कूदते हैं। इस प्रकार ऊंचाई से कूदने को नापा जाता है। चौथी चीज जो इस कमरे में होनी चाहिए वह है रस्सी की सीढ़ी जिस पर वह चढ़ सकें।

दस्तकारी का कमरा—इस कमरे में मिट्टी होनी चाहिए जिसके द्वारा बालक वस्तुएं बना सके। माता मॉण्टेसोरी के अनुसार कुम्हार का काम सभ्यता का पहला काम रहा है। पहले पहल मनुष्य ने मटके, घड़े इत्यादि बनाए। मोहन्जोदड़ों की खुदाई से यह बात स्पष्ट है। इसलिए बालक को यह हाथ का काम देना चाहिए क्योंकि यह मनुष्य जाति के विकास की लड़ी में मुख्य स्थान रखता है। इसी प्रकार बालक को छोटी छोटी ईटें बनाने की सामग्री, उनके पकाने की भट्टी इत्यादि का उसमें प्रवन्ध होना चाहिए।

स्कूल के इस भवन और इसके उपकरणों के अतिरिक्त छोटा सा बाग़ और खेलने का स्थान होना चाहिए। इस बाग में सब्जी इत्यादि लगानी चाहिए जिसमें बालक बहुत बड़ा भाग ले और यही सब्जी बालकों के लिए रसोई में काम आनी चाहिए। यदि बाग़ में छत हो तो बहुत अच्छा है क्योंकि बालक धूप और रोशनी से बचा रह कर बहुत सा समय बाहर गुजार सकता है। बगीचे के एक भाग में पक्षी और पशुओं के पालने का भी घर होना चाहिए। मुर्ग़ी, ख़रगोश, बकरी इत्यादि होने चाहिएं और इनके खाने पीने तथा देखने भालने का काम बच्चों को ही देना चाहिए।

सारांश

क—स्कूल का भवन और उसमें उपकरण का उद्देश्य वही है जो एक प्रयोगशाला का होता है। प्रयोगशाला का उद्देश्य ऐसी शारीरिक परिस्थितियों की उपस्थिति है जिनमें विषय अपने स्वभाव और क्रियाओं का चमत्कार दे सके। स्कूल के भवन और सामग्री का उद्देश्य यह है कि बालकों की स्वाभाविक क्रियाओं को अधिक से अधिक अवसर दे सके।

ख—माता मॉण्टेसोरी के अनुसार स्कूल के भवन में निम्नलिखित कमरे होने चाहिएं —

एक बड़ा कमरा, उसके साथ एक गुसलखाना, एक खाने का कमरा, एक कौमन रूम, एक दस्तकारी का कमरा, एक व्यायाम का कमरा और एक विश्राम का कमरा।

इन कमरों के उपकरण के सम्बन्ध में यह बातें स्मरण रखने योग्य हैं—

(१) प्रत्येक कमरे का उपकरण बालक की सुविधाओं पर आधारित होना चाहिए। सब वस्तुएं ऐसी होनी चाहिएं जिनको बालक स्वयं अपनी इच्छानुसार खोल व बन्द कर सके, या प्रयोग कर सके। अर्थात् चीज़ें हल्की होनी चाहिएं जिन्हें बालक सुविधा से उठा धर सके।

दरवाजों, खिड़कियों और अलमारियों के कुण्डे ऐसे नीचे होने चाहिएं कि बालक उन्हें सुविधा के साथ खोल व बन्द कर सके।

(२) चीज़ों के रंग अत्यन्त सुन्दर और आकर्षणीय होने चाहिएं और यह रंग ऐसे होने चाहिएं कि इन्हें धोया जा सके।

(३) प्रत्येक कमरे में कला की दृष्टि से सुन्दर तस्वीरें होनी चाहिएं। ऐसी तस्वीरों के विषय पारिवारिक जीवन के सुन्दर दृश्य या प्रकृति, पशु-पक्षी, फल फूलों वाले सुन्दर दृश्य होने चाहिएं।

ग—प्रत्येक कमरे का उपकरण इस प्रकार का होना चाहिये—

(१) बड़ा कमरा—इस कमरे की आवश्यकताएं यह हैं। छोटी छोटी कुर्सियां और भिन्न भिन्न रूपों की मेजें, एक लम्बी अलमारी, एक बड़ी दराज़ों वाली मेज़, दीवार के साथ साथ श्यामपट, छोटी छोटी दरियां और सुन्दर दृश्यों की तस्वीरें।

(२) कौमनरूम में छोटी छोटी कुर्सियां, मेज़ें, मेज़ पर एलबम, छोटे छोटे घरेलू खेल, ठोस रेखा गणित सम्बन्धी लकड़ी के टुकड़े, वीणा, फूलदान, गमले, पेन्टिंग्ज़ होनी चाहिएं।

(३) खाने का कमरा—इसमें छोटी छोटी कुर्सियां, मेज़ और अलमारी होनी चाहिएं अलमारी में कांच के बर्तन होने चाहिएं। खाने पीने के लिए धातु के बर्तन नहीं होने चाहिएं।

(४) शृंगार के कमरे में नीचे लगे हुए शीशे, सिंक और मुँह धोने को चिलमची, नाखून साफ़ करने के बुर्श, तौलिये इत्यादि होने चाहिएं।

(५) विश्राम का कमरा—यह कमरा आवाज़ और रोशनी से सुरक्षित होना चाहिए। इसमें एक लम्बी दरी बिछी होनी चाहिए।

(६) व्यायाम के कमरे में चौड़ी तख्ती वाला झूला, तार, कूदने के लिए प्लेटफार्म, रस्सी की सीढ़ी, इत्यादि होने चाहिएं।

(७) दस्तकारी का कमरा – इसमें कुम्हार के काम की सामग्री होनी चाहिए ताकि बालक हाथ से मिट्टी को भिन्न भिन्न रूप दे सकें।

(घ) स्कूल में बगीचा होना चाहिए। बगीचे की ऐसी छोटी छोटी क्यारियां का प्रबन्ध होना चाहिए इनकी देख भाल बालक कर सकें।

———

१६

खाद्य पदार्थ और व्यायाम

माता मॉण्टेसोरी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक और मानसिक विकास है। स्कूल की शिक्षा पर बालक के मानसिक विकास की ही जिम्मेदारी नहीं होतो अपितु उस पर शारीरिक विकास का भी बोझ है। शारीरिक विकास के लिए खाद्य पदार्थों और व्यायाम की ठीक विधियों की आवश्यकता है यद्यपि यह यथेष्ट नहीं। क्योंकि बालक के मन की स्वस्थता उसके शारीरिक स्वास्थ्य की एक अति आवश्यक परिस्थिति है। माता मॉण्टे-सोरी ने इस सत्य का परिणाम अपने ग़रीबों के बाल भवन में पाया। उन्होंने देखा कि स्कूल के ग़रीब बालक जो अच्छी खुराक और शारीरिक वातावरण से वंचित थे वह शिक्षा विधि द्वारा शारीरिक रूप से भी बहुत बेहतर हो गये। यह सत्य हम साधारण रूप से भी परख सकते हैं। प्रसन्नता घी और दूध का काम देती है। मॉण्टेसोरी शिक्षा विधि जहां मुख्य रूप से इन्द्रिय, बुद्धि और भाव विकास के लिए है गुप्त रूप से शारीरिक विकास भी करती है।

बालक के शरीर या मन विकास की विधियां नियुक्त करते समय हमें एक मुख्य नियम को सदा स्मरण रखना चाहिए और वह यह है—बालक एक नन्हा प्रौढ़ नहीं। बालक और प्रौढ़ की शारीरिक और मानसिक दोनों अवस्थाओं में बुनियादी भेद है, इसलिए बालक के लिए वह ही चीज़ें कम मात्रा में उपयोगी नहीं जो प्रौढ़ के लिये अधिक मात्रा में उपयोगी हैं। बालक और प्रौढ़ के जीवन का अन्तर मात्रा में नहीं गुण में है। इसलिए बालक और प्रौढ़ के विकास की विधियों का अन्तर मात्रा में होने के स्थान पर गुणों में होना चाहिए।

बालक के खाद्य पदार्थों को नियुक्त करने के सम्बन्ध में दो बातें स्मरण रखनी चाहियें।

१. बालक में चबाने की शक्ति बहुत कम होती है। वह हम बड़ों की तरह से अपने भोजन को पूरी तरह नहीं चबा सकता।

२. उसका मेदा भोजन को पीसने के अयोग्य होता है।

इसलिए इन दोनों बातों को सामने रखकर बालक का भोजन नियुक्त होना चाहिये। बालक को सब्ज़ियों का रस, पतली और छनी हुई हल्की दालों का रस और सब्ज़ियां कूट या पीस कर देनी चाहिएं।

पहले वर्ष में बालक का खाना पीना मुख्य रूप से दूध ही होना चाहिये दूसरे वर्ष में उसे सब्ज़ियों के रस देने चाहिएं और तीसरे वर्ष में उसे सब्ज़ियां और मेवा देना चाहिए।

बालक के खाने के समय नियुक्त होने चाहियें और नियुक्त समय के अतिरिक्त उन्हें और कुछ न खाने देना चाहिये। साधारणतः तीन वर्ष से ऊपर के बालक को चार बार खुराक मिलनी चाहिए—सुबह का नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम का दूध और रात का खाना। परन्तु कई बालकों को इस नियम से छूट देनी चाहिये। कई बालक विरासत से ऐसी शारीरिक गठन लेकर आते हैं कि उनकी शारीरिक मांग थोड़े थोड़े समय पश्चात् परन्तु थोड़ा थोड़ा खाने में होती है।

मॉण्टेसोरी स्कूल ९ से ४ बजे तक होता है। उस समय में खाने के दो अवसर आ जाते हैं और यह अवसर स्कूल द्वारा बालक में भोजन के सम्बन्ध में स्वस्थ विधि का अभ्यास डाल सकते हैं। स्कूल में बालक का दोपहर का खाना अच्छा और पेट भर कर होना चाहिये। इस समय उसे उन सब्ज़ियों का रस मिलना चाहिए जो बालकों ने स्कूल में स्वयं बोई हैं। कुछ रोटी देनी चाहिएं और यदि बालक अच्छे खाते पीते घर के हों तो उन्हें फल मक्खन इत्यादि देने चाहिये। शाम को हल्का भोजन होना चाहिए, जैसे दूध डबलरोटी या मेनलफ़ूड और दूध देना चाहिए। इसके साथ शहद, बिस्कुट और पकाये हुए फल होने चाहियें। घर की दो खुराकें इस प्रकार नियुक्त होनी चाहिएं—सुबह नाश्ते के समय ताजे दूध का प्याला और परौंठा, टोस्ट, मक्खन और शहद होना चाहिये। रात का खाना हल्का होना चाहिये जैसे चावलों की खीर, चुपड़ा फुलका या कच्ची डबलरोटी के टुकड़े पर मक्खन लगा कर देना चाहिए। रात का खाना हल्का इसलिए होना चाहिये कि बालक रात को आराम से सो सके।

बालक के खाने के समय हमें उसे खाने का तरीका और सफ़ाई से खाना सिखाना चाहिए। परन्तु यह अभ्यास बलपूर्वक नहीं ठूंसे जाने चाहिएं। उसके सामने जीवित आदर्श पेश करने चाहियें और उसे अपने विकासक्रम के अनुसार अभ्यास डालने देना चाहिये। कई बालक यह आदतें जल्दी सीख जाते हैं कईयों को अधिक समय लगता है। इसलिए सबसे एक गतिक्रम की आशा और मांग न करनी चाहिये।

व्यायाम शिक्षा—

व्यायाम शिक्षा के सम्बन्ध में भी वही नियम सत्य हैं जो बालक के खाने पीने के सम्बन्ध में सत्य है अर्थात् बालक और प्रौढ़ के व्यक्तित्व की मांगें मुख्य रूप से भिन्न भिन्न हैं। इसलिए उसकी विकास विधियों में भी अन्तर है। जो व्यायाम विधियां प्रौढ़ के लिये उपयोगी हैं, वह बालक के लिए उपयोगी नहीं। जन्म के समय बालक का धड़ अर्थात् सिर से लेकर कमर के नीचे तक, टांगों के मकाबले में ६८ प्रतिशत होता है अर्थात् टांगें केवल ३२ प्रतिशत होती हैं। परन्तु प्रौढ़ के धड़ और उसकी टांगों का अनुपात ५१ या ५२ प्रतिशत होता है। पहले वर्ष में ६८ प्रतिशत के स्थान पर धड़ ६५ प्रतिशत में रह जाता है। दूसरे साल में ६३ और तीसरे में ६२ प्रतिशत। जब बालक ७ वर्ष का होता है तो उसके धड़ और शरीर का अनुपात ५७ या ५६ हो जाता है। इन सब धड़ और बाकी शरीर के अनुपात की तुलना प्रौढ़ के साथ इसलिए की गई है कि बाल शिक्षक बालकों पर प्रौढ़ की व्यायाम विधियों का प्रयोग न करे और न ही बालक से प्रौढ़ गतियों की मांग करे। बालकों की टांगों को उनकी शारीरिक गठन के कारण अधिक बोझ उठाना पड़ता है क्योंकि उसके धड़ का भाग उसकी टांगों से कहीं अधिक है। यही कारण है कि बालक हाथों और पांवों के बल पहले-पहल चलता है। उसे जल्दी खड़ा करना और चलाना उसकी टांगों को बुरा रूप दे देना है। बालक की निर्बल टांगें ऐसी अवस्था में झुक कर टेढ़ी होकर रह जाती है।

बालक के लिए व्यायाम का उद्देश्य, व्यायाम साधनों द्वारा उसकी शारीरिक गतियों अर्थात् चलना, बोलना, श्वास लेना और जीवन की साधारण गतियों अर्थात कपड़े उतारना और पहनना, बटन खोलना व बन्द करना जूती के तसमें खोलना व बन्द करना, थोड़ी साधारण भारी वस्तुएं उठाना

इत्यादि हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए माता मॉण्टेसोरी ने विशेष व्यायाम विधि इस प्रकार नियुक्त की हैः—

(१) एक तारों वाली बाड़ व्यायाम के कमरे में होनी चाहिए। बालक ऊपर की तार को हाथों से पकड़ कर और नीचे की तार पर पांव रख कर उस पर चलता है इससे हाथों और पांवों का व्यायाम, बिना धड़ का बोझ उन पर पड़ने के, होता है क्योंकि धड़ बाहर की ओर निकल जाता है।

(२) व्यायाम के कमरे में एक झूला होना चाहिए जिस पर बैठने की तख्ती इतनी चौड़ी होनी चाहिए कि बालक के बैठने पर पाँव नीचे न लटकें। यह झूला दीवार से कुछ दूर होना चाहिए, दीवार से कुछ दूर एक तख्ता भी गढ़ा होना चाहिए। बालक झूलने के समय अपनी टांगों से उस तख्ते को धक्का लगा कर झूला लेता है। इस प्रकार बालक नीचे के शरीर का जिसका अभी विशेष विकास होना है--अच्छा व्यायाम हो जाता है।

(३) लंगर सम्बन्धी खेल—यह खेल इस प्रकार है—रबड़ की गेंदों को धागे से बांध देते हैं और बालक अपनी कुर्सियों पर बैठकर उन्हें मुक्के मारते हैं। यह खेल एक बालक भी खेल सकता है और कई बालक भी खेल सकते हैं। इस खेल का विशेष लाभ यह है कि इससे बांहें और रीढ़ की हड्डी का व्यायाम होता है और बालक की आंखों को हिलती जुलती वस्तुओं के फ़ासले को ठीक जानने की ट्रेनिंग हो जाती है।

(४) सीधी लाइन पर चलने का खेल--भूमि पर चाक से एक लाइन खींच दी जाती है और बालक को उस पर चलने को कहा जाता है। यदि सारा चाक बिछा दिया जावे तो बालक को अपने चलने की गति का अनुमान लग जावेगा। इस व्यायाम से बालक को सुन्दरता से चलना आ सकता है।

(५) सीढ़ी का व्यायाम--स्कूल में एक पेचदार सीढ़ी होनी चाहिए। इस सीढ़ी का प्रत्येक पैर बहुत छोटा होना चाहिए। सीढ़ी के एक ओर जंगला होना चाहिए ताकि बालक उसे पकड़ कर चढ़ सके दूसरी ओर खुली और गोल होनी चाहिए। इस व्यायाम से बालक सीढ़ी चढ़ना और उतरना सीखता है और बिना जंगले के चढ़ना उतरना सीख जाता है।

(६) ऊंचा और लम्बा कूदने का व्यायाम--व्यायाम के कमरे में एक नीचा लकड़ी का प्लेटफार्म होना चाहिए जिसके ऊपर बहुत सी लाइनें होनी

चाहिएं। यह लाइनें इसलिए होती हैं कि बालक के लम्बा कूदने की पैमाइश हो सके। इसके साथ एक सीढ़ी होनी चाहिए जिसके पैर थोड़े फ़ासले पर होने चाहिएं। बालक इस पर से कूदने का व्यायाम कर सकते हैं।

(७) रस्सी की सीढ़ी--इस रस्सी पर चढ़ने उतरने से बालक कई क़िस्म की शारीरिक गतियों को पूर्ण कर लेता है। वह घुटनों के बल झुकना, उठना और बिना गिरने के आगे पीछे मुड़ना सीख जाता है। इस व्यायाम से बालक की छाती की वृद्धि होती है और उसके हाथ से पकड़ने की मुख्य गति की भी उन्नति होती है।

(८) बालक का एक और व्यायाम मार्चिंग है। यह मार्चिंग संगीत के साथ होना चाहिए। बालक के गाते हुए चलने से उसके फेफड़ों का भी व्यायाम होता है।

(९) आंख मिचौनी का खेल भी बहुत उपयोगी है।

(१०) बालक के खेती बाड़ी पशु पालन से भी बालक के शरीर का विकास होता है। खुरपे से भूमि खोदने और पौधे लगाने से बालक की अपने अंगों पर प्रभुत्वता बढ़ती है। बालक के बार बार उठने और चीजें ले आने से उसकी शारीरिक गतियां सुधरतीं हैं।

(११) बालक को कपड़े पहनने और उतारने अर्थात बटन लगाने व खोलने, बूट के लेस खोलने बन्द करने, नाड़ा बांधने खोलने, रिबन बांधने खोलने, ज़िप लगाने व खोलने इत्यादि का अभ्यास उन्हें विशेष फ्रेमों द्वारा दिया जा सकता है। एक एक फ्रेम में एक एक गति का व्यायाम होता है अर्थात एक फ्रेम में कपड़े पर काज़ बटन बने हुए हों जिन्हें बालक खोलता व बन्द करता है एक में लेस हों जिन्हें वह खोल व बांध सके, इत्यादि। ऐसे अभ्यास बालक को शारीरिक अंगों के एकीकरण के विकसित करने में सहायक होते हैं।

सारांश

बालक के शारीरिक विकास के लिए तीन प्रकार के साधन आवश्यक हैं।

(१) मानसिक स्वास्थ्य अवस्था—शरीर के स्वास्थ्य के लिए मन का स्वास्थ्य एक आवश्यक परिस्थिति है। यदि शिक्षा विधि बालक के मन पर बोझा हो तो वह केवल उसके मानसिक विकास के लिए हानिकारक नहीं उसके

शरीर का भी अहित करती है। मॉण्टेसोरी विधि द्वारा बालकों के शारीरिक विकास में भी उन्नति देखी जाती है।

(२) स्वस्थ भोजन—बालक की खाद्य योजना का आधार इस नियम पर होना चाहिए कि बालक और प्रौढ़ की शारीरिक मांगों का भेद मात्रा का नहीं गुणों का है। (क) बालक की पाचन शक्ति प्रौढ़ की अपेक्षाकृत बहुत कम होती है और उसका मेदा भोजन को पीसने के अयोग्य होता है। इस लिए पहले वर्ष में दूध, दूसरे में सब्ज़ियों का रस, और तीसरे में सब्ज़ियां और मेवा होनी चाहिये। (ख) यह खाद्य चार बार नियुक्त समय देने चाहिएं परन्तु यह नियम सब बच्चों पर न थोपना चाहिये–कुछ बच्चों की शारीरिक गठन ही ऐसी होती है कि वह एक समय में औरों की अपेक्षा बहुत कम खाद्य ले सकते हैं व पाचन कर सकते हैं। ऐसे बालकों को अधिक बार परन्तु नियुक्त समय पर भोजन मिलना चाहिए। (ग) भोजन के समय बालक को खाने की विधि और सफ़ाई से खाना खाने के लिये अपना जीवन दृष्टांत और उत्साह देना चाहिये। ऐसी शिक्षा देते समय स्मरण रहे कि प्रत्येक बालक अपनी क्रमगति अनुसार ही सीख सकता है और पीछे रह जाने वाले बालकों की निन्दा या दण्ड अनुचित है। (घ) स्कूल में दीए जाने वाले भोजन की योजना इस प्रकार होनी चाहिये—

दोपहर का भोजन सब्ज़ियों के रस, डबलरोटी, मक्खन, फलों आदि से समूहित होना चाहिये। शाम की चाय में उसे दूध डबलरोटी या मैलन फ़ूड और दूध देना चाहिये।

व्यायाम शिक्षा का आधार भोजन की तरह इस सत्य पर आधारित है कि बालक नन्हा प्रौढ़ नहीं। उसका धड़, टांगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है और इस लिए उसके व्यायाम साधन ऐसे होने चाहिएं जिससे उसके धड़ का बोझ उसकी टांगों पर कम से कम पड़े। और दूसरी ओर वह व्यायाम ऐसे होने चाहिएं जो बालक की टांगों और कमर की बढ़ौती और शक्ति को पुष्टि दे। ऐसे व्यायाम यह हैं—

तारों वाली बाढ़ का व्यायाम, चौड़ी तख़्ती वाले झूले पर झूलना, लंगर का खेल, सीधी लाइन पर चलना, सीढ़ी का व्यायाम, ऊँचा और लम्बा कूदना, रस्सी की सीढ़ी पर चढ़ना, मार्चिंग, आंख मिचौनी खेलना, अथवा बालक के कपड़े पहनने का अभ्यास।

१७

सृष्टि विषयक शिक्षा

मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास वास्तविकता और समाज के साथ एकत्व पूर्ण सम्बन्ध लाने में है। प्रकृति और समाज ही मनुष्य विकास के साधन हैं। इनके साथ उचित सम्बन्ध ही में उसका मोक्ष और स्वतन्त्रता है। इनके साथ कुरूप सम्बन्ध मन को भी कुरूप बना देता है। इसके साथ सुन्दर सम्बन्ध मन को सुन्दर और स्वस्थ बना देता है। उदाहरणार्थ यदि मनुष्य का वास्तविकता के साथ सम्बन्ध न हो और वह कल्पना की दुनियाँ में रहने लगे तो समय के साथ वह पागल हो जाता है। पागलपन वास्तविकता से सम्बन्ध टूट जाने का चिन्ह है। पागलपन मन की खलबली तथा ऊधम का नाम है। इस खल-बली का कारण और कुछ नहीं केवल समाजीय वास्तविकता से विमुखता है। इसी प्रकार समाज से उचित सम्बन्ध के अभाव ही असमाजीय व्यवहार का कारण हैं। हमारा असामाजीय व्यवहार जिसने हमारे समाजीय जीवन को नारकीय बनाया हुआ है, केवल इसलिए है कि हमारा परस्पर सम्बन्ध ठीक सूत्रों से नहीं जुड़ा हुआ।

अतएव प्रकृति और समाज के साथ ठीक सम्बन्ध केवल हमें मन की कुरूपता से ही नहीं बचाता अपितु हमारे मन को जीवन के अनुभवों से मालामाल भी करता है।

प्रकृति और समाज से ठीक सम्बन्ध के अभाव से हमारा मन कुरूप ही नहीं होता अपितु कई अमूल्य अनुभवों से वंचित भी रह जाता है। जो मनुष्य कल्पना की दुनिया में वास करता है वह वैज्ञानिक सत्य खोजने, जानने और उपलब्ध करने के अनुभवों से वंचित रहता है। यह अनुभव ही मन के खज़ाने हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य प्रकृति के सुन्दर दृश्यों से अपना सम्बन्ध अनुभव नहीं करता वह सौन्दर्यात्मक अनुभवों से वंचित रहता है। वह तो एक ऐसे जल के कण की तरह है जो जीवन के सागर से कट कर अकेला सूख रहा हो।

माता मॉण्टेसोरी ने प्रकृति की शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया है। (क) पौधे और पशु पक्षियों के साथ मेल की शिक्षा (ख) जड़ वस्तुएं और दृश्य, मकानात तथा ऐतिहासिक स्थान के साथ मेल की शिक्षा।

माता मॉण्टेसोरी अपने स्कूल में कृषि और पशु पक्षी पालन पोषण को मुख्य कार्यों का स्थान देती हैं। हम देख चुके हैं कि माता मॉण्टेसोरी स्कूल के कौमन रूम में छोटे छोटे गमलों के रखने, बालकों को घर के अन्दर रखने वाले पौदों के बीजों को बोने, पानी देने, और पालन की शिक्षा देती हैं। इसी प्रकार वह स्कूल के भवन के साथ एक बाग़ीची की शिक्षा देती हैं, जिसमें प्रत्येक बच्चे को एक एक क्यारी दी जाती है। इसमें बालक पौदे लगा सकता है। इस बाग़ीची में पशुओं और पक्षियों के रहने सहने पालन पोषण का प्रबन्ध किया गया है। और इनकी देखभाल मुख्य रूप से बालकों को सिखाई जाती है।

माता मॉण्टेसोरी अपनी शिक्षा विधि में खेती बाड़ी तथा पशु पक्षियों की देखभाल की शिक्षा में अमूल्य लाभ पाती हैं और वह यह है—

पौदों और पक्षियों के पालन पोषण और देख भाल से बालक में जीवन की घटनाओं को देखने और जाँचने की शक्ति की वृद्धि होती है। इन की सेवा करने से बालक के भीतर इनके सम्बन्ध में रुचि और प्रेम तक उत्पन्न हो जाता है। इस रुचि और प्रेम सेवा से उसे अपने माता पिता और अध्यापक की सेवा का बोध स्वाभाविक रूप में समय के साथ हो जायेगा।

ऐसे काम से बालक भी अपने जीवन में आदर्श अनुभव करने लगता है। इनकी सेवा से जब बालक को यह अनुभव होने लगता है कि पौदे, पशु और पक्षी उसकी सेवा के बिना सूख जावेंगे या मर जावेंगे तो उसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि उसके जीवन में एक आदर्श है। उसका अनुभव उसी प्रकार का है जिस प्रकार माता पिता बालक के होने पर अपने जीवन में नया आदर्श अनुभव करते हैं कि इस बालक को पालना पोसना और बड़ा करना है। बालक अपने पौदे और पक्षियों के सम्बन्ध में ऐसा ही अनुभव करता है। उनको बढ़ते देखकर अवर्णनीय सुख अनुभव करता है। माता मॉण्टेसोरी ने इस सचाई को अपने स्कूल की रिपोर्टों में पूर्ण पाया है। एक स्कूल के अध्यापक ने माता मॉण्टेसोरी को लिखा कि कबूतर के अन्डों से

बच्चों के निकलने पर स्कूल के बालकों में शादी के अवसर या नये बालक के उत्पन्न होने के समान खुशियां हुईं। बालक ऐसा अनुभव कर रहे थे कि किसी हद तक वह इन बच्चों के माता पिता हैं। एक बार माता मॉण्टेसोरी ने देखा कि एक दिन बालक एक गुलाब के फूल के गिर्द बैठे हुए थे और पूर्णतः शान्ति से, जैसे कि वह सृष्टि रचयिता की अलौकिक कला पर एकाग्रचित्त होकर सोच विचार में मग्न हैं।

पौदों पशुओं और पक्षियों के पालन पोषण और देख भाल से बालक में सहनशीलता, आत्म विश्वास तथा आशा की भावना का विकास होता है। जब बालक बीज लगाता है तो वह धैर्य से उसके उगने की आशा बांधे रहता है। उसके उगने पर वह धैर्य से उसको बढ़ते देखता है। उसके बढ़ने पर धैर्य से उसमें फूल और फल आने की आशापूर्ण प्रतीक्षा करता है। उसे यह अनुभव होता है कि किस प्रकार सब्ज़ी के पौदे बहुत जल्दी उग आते हैं और फलों के पौदे देर से उगते हैं। प्रकृति में इन भिन्न भिन्न विकास क्रमों के अनुभव से बालक की आत्मा में समतुल्यता, भिन्नता स्वीकृति, स्थाई शान्ति का विकास होता है। बालक, परम्परा से कृषक की भांति अपने जीवन और प्रकृति की घटनाओं के सम्बन्ध में स्वस्थ वृत्ति, आत्म विश्वास और आशा ग्रहण करके कुछ जीवन सिद्धान्तों की नींव डाल लेता है।

पौदे तथा पशु पक्षियों के पालन पोषण से बालक मनुष्य जाति विकास के इतिहासानुसार विकसित होता है। ऐसी गतियों से बालक का विकास, मनुष्य जाति के विकास के साथ एकता में आ जाता है। मनुष्य सुसभ्य तब ही समझा गया जब उसने कृषि करना, तथा पशु पक्षियों का पालन पोषण आरम्भ किया। सदियों तक इस खेती बाड़ी और पशु पालन की अवस्था में रहा और फिर वह कला अर्थात बनावटी वस्तुएं बनाने के योग्य हुआ। बालक को अपने विकास के लिए मनुष्य जाति के विकास पथ पर ही चलना चाहिए।

पौदे, पशु और पक्षी की सेवा से बालक में वास्तविकता के साथ एकता का भाव विकसित होता है। बालक स्वाभाविक ही जीवित जगतों के साथ रुचि अनुभव करते हैं। यही कारण है कि छोटे छोटे बालक केंचुआ और खाद में कीड़ों के चलने फिरने के देखने में रुचि लेते हैं और हमारी तरह घृणा का भाव अनुभव नहीं करते। बालक में जीवित जगत के सम्बन्ध में इस

राम पुर मॉण्टेसोरी स्कूल में क्ले मौडलिंग की क्लास

विश्वास और प्रेम का भाव उसकी विश्व के साथ एकता के चिन्ह हैं। इस एकता को बढ़ाने का साधन यही है कि बालक को पौदों, पशु और पक्षी पालन पोषण के अवसर और शिक्षा दी जावे।

जड़ जगत के साथ सम्बन्ध की शिक्षा—जड़ जगत सम्बन्धी वस्तुओं और दृश्य या ऐतिहासिक भवनों तथा स्मृति स्तम्भ की रक्षा की सदा समस्या खड़ी रहती है। यह इसलिए है कि साधारण व्यक्ति में जड़ जगत के साथ उचित सम्बन्ध का विकास नहीं हुआ। शहरों की गन्दगी, दीवारों की कुरूपता इस बात का चिन्ह हैं कि मनुष्य जड़ जगत के साथ एकता स्थापित नहीं कर सका। यह एकता का सम्बन्ध कैसे विकसित हो? एक तो उपदेश विधि है, परन्तु यह व्यर्थ है। इस विधि से कभी एकता का भाव फूटता तक नहीं, फिर विकसित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यदि जड़ वस्तुओं के सम्बन्ध में सम्मान और प्रेम उत्पन्न करना हो तो चित्रकला सम्बन्धी शिक्षा देनी चाहिए।

कुम्हार का काम मनुष्य विकास के इतिहास में वही महत्वपूर्ण स्थान रखता है जो खेती बाड़ी रखती है। सबसे पहली वस्तु जिसके बनाने की मनुष्य को आवश्यकता अनुभव हुई वह हांडी थी, जिसके द्वारा वह आग से अपना खाना पका सके। मनुष्य का पहले पहल खाना हांडी में पका। मनुष्य के सुन्दरता प्रेम भाव ने पहले पहल हांडियों को सुन्दर बनाने में प्रकाश पाया। यूनानियों के चित्रकला सम्बन्धी काम देखिये। मिस्र के एतिहासिक स्थानों पर दृष्टिपात कीजिए। "हड़प्पा और मोहनजदरो" प्राप्त बर्तनों का अध्ययन कीजिए। देखकर आपको अनुभव होगा कि इनकी चित्र सम्बन्धी असाधारण बुद्धि ने बर्तनों को अवर्णनीय सुन्दर रूप देने में प्रकाश पाया है। मिट्टी से वस्तुएं बनाने के काम का ऐतिहासिक महत्व के अतिरिक्त व्यक्तिगत महत्व भी है। मिट्टी अनेक रूप धारण कर सकती है। इस पर मनोनुकूल रोचक सजावट हो सकती है। इसमें प्रत्येक अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अनुभव कर सकता है। पहले पहल बालक साधारण लाल मिट्टी के बर्तन बनाते हैं और उसमें मिट्टी के आलू डालते हैं। फिर वह नालियों वाले बर्तन बनाते हैं, सुराही बनाते हैं और फिर हथ्थी वाला बर्तन बनाते हैं, आदि आदि।

इसी प्रकार बालक छोटी छोटी ईंटें बनाते हैं और उन्हें भट्टी में पकाते

हैं। राज की तरह उनसे दीवारें बनाते हैं और फिर खिड़की, दरवाज़े तथा अल्मारियों के साथ पूरा मकान बनाते हैं। पांच छः वर्ष के बालक कुम्हार की चक्की का भी काम सीख लेते हैं।

सारांश

बालक को प्रकृति के साथ योग में लाने की शिक्षा मॉण्टेसोरी शिक्षा का एक अविच्छिन्न भाग है। यह शिक्षा दो भागों में विभाजित की गई है। (क) पौदे, पशु और पक्षी पालन की शिक्षा। (ख) जड़ वस्तुओं के साथ मेल की शिक्षा।

(क) पौदे, पशु और पक्षियों के पालन की शिक्षा के यह अमूल्य लाभ हैं। (१) बालक जीवन की घटनाओं को देखने और जाँचने द्वारा इनका ज्ञान पाता है। (२) इनकी सेवा से उसमें इनके प्रति रुचि और प्रेम का विकास होता है। (३) इनके प्रति सेवा और प्रेम से उसमें माता पिता और अध्यापक की सेवा और प्रेम के अनुभव की जागृति होती है। (४) ऐसी सेवा से बालक उसी प्रकार अपने जीवन में आदर्श अनुभव करता है जैसे माता पिता बच्चे के होने पर अपने जीवन का अर्थ अनुभव करते हैं। ऐसे जीवित अस्तित्वों की सेवा द्वारा उसमें सहनशीलता, आत्म विश्वास तथा आशा की भावना विकसित होती हैं। (५) जीवित अस्तित्वों में भिन्न भिन्न विकासक्रम के द्वारा उसमें विभिन्नता स्वीकृति और स्थायी शान्ति का विकास होता है। (६) ऐसी पालना द्वारा बालक की प्रकृति के साथ एकता अनुभव में बढ़ौती होती है। और इस एकता द्वारा वह मानसिक स्वास्थ्य को लाभ करता है। (७) ऐसी शिक्षा बालक की शिक्षा को मनुष्य जाति के विकास पथ का अनु-करण करवाती है।

(ख) जड़ जगत के प्रति शिक्षा कुम्हार के काम और चित्रकला द्वारा हो सकती है। चित्रकला द्वारा बालक प्रकृति की सुन्दरता का अनुभव करता है और प्रेम उत्पन्न करता है। कुम्हार के काम द्वारा बालक इस जगत के साथ अपना सम्बन्ध घनिष्ट करता है। जैसे हम शरीर को "अपना" समझते हैं क्योंकि यह हमारे भावों और विचारों की तृप्ति का यन्त्र है इसी प्रकार जब बालक मिट्टी द्वारा अपने भावों और विचारों के प्रकाश को मुख्य यन्त्र पाता है तो उसे "अपना" समझता है।

१८

दैनिक जीवन के साधनों की शिक्षा

निसन्देह बालक में यह प्रबल भावना होती है कि वह दैनिक जीवन के साधनों को स्वयं कर सके। इस प्रबल भावना से प्रेरित हो कर ही बालक चलने फिरने योग्य होने पर, घर और समाज में प्रौढ़ों की दैनिक क्रियाओं को स्वयं करने की चेष्टा करता है। वह अपने हाथ धोने की चेष्टा करता है, अपने बटन आप लगाने का संग्राम करता है। कुर्सी, स्टूल या अन्य वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में लगा हुआ देखा जाता है। एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पानी उलटने में व्यस्त पाया जाता है। इन सब क्रियाओं को करवाने वाली प्रेरणाऐं उसके जीवन उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं। बालक के जीवन का उद्देश्य लाचारी और निर्भरता से उठ कर स्वतन्त्र जीवन पाना है और सइ के फलस्वरूप प्रौढ़ समाज का सदस्य बन कर उसकी रचनात्मक सेवा करना है।

मॉण्टेसोरी स्कूल में बालक की दैनिक क्रियाओं के करने की प्रेरणा को पूर्ण किया जाता है। प्रश्न किया जा सकता है कि जब ऐसे साधन बालक घर में ही सीखता है तो स्कूल में करवाने की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है कि स्कूल का काम घर से भिन्न क्रियाएं कराने में ही नहीं अपितु घर की क्रियाओं में भी अधिक शिक्षित करना है, उदाहरणार्थ बालक घर में बोलना सीखता है परन्तु स्कूल में भी उसे भाषा सिखाई जाती है। घर में सीखी हुई भाषा को नियम बद्धता, सुष्ठता और शुद्धि के साथ बताया और समझाया जाता है। यही साधारण साधनों को स्कूलों में कराने का उद्देश्य है। स्कूल में साधनों के कराने से बालक में, इन क्रियाओं के करने में वह पूर्णता, सुसभ्यता और सुष्ठता आ जाती है, जो घर में नहीं आती। कारण यह है कि बालक को स्कूल में इन क्रियाओं के करने के लिए अधिक उपयोगी वातावरण मिलता है और अध्यापक का उचित निर्देशन शिक्षा मिलती है। उसे अपनी क्रियाओं की त्रुटियों को जानने और उन पर प्रभुत्व पाने का विशेष अवसर मिलता है। इस लिए माता पिता तथा बालकों के रक्षकों को इस भूल में न पड़ जाना चाहिए कि स्कूल में ऐसे साधनों द्वारा

लिए जा रहे हैं।

मॉएटेसोरी स्कूलों में साधारण जीवन की शिक्षा के साधन इस प्रकार के हैं— हाथ धोना, बटन और बकल लगाना, बूट या धात को पालश करना, पानी एक बर्तन से दूसरे में डालना व हाथ धोना, कुर्सी व चटाई को एक जगह से उठा कर दूसरी जगह ले जाना, फ़र्श को पोंछना, पौधों को पानी देना, उनकी रक्षा करना, फूलदान में फूल लगाना, आलू काटना, नैपकिन व डस्टर को तह करना, चटाई को बिछाना इत्यादि ।

स्कूल में दैनिक क्रियाओं से प्रयुक्त होने वाली चीज़ों की विशेषताएं यह हैं—

१. चीज़ों की ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई, और वज़न, बालक के शारीरिक अंगों विकास और शक्ति के अनुसार होता हैं ।

२. यह चीज़ें आकर्षक होनी चाहिएं ताकि बच्चा इनमें रूचि ले।

३. इन चीज़ों के रूप आकार इनके द्वारा किए जाने वाली क्रियाओं के सूचक होते हैं।

४. प्रत्येक दैनिक साधन के लिए चीज़ों का अलग २ सैट होता है ।

५. इन चीज़ों के संग्रह में ऐसी कोई चीज़ समुहित नहीं होनी चाहिए जिसकी दैनिक साधनों में आवश्यकता न हो।

६. इन चीज़ों को ठीक तरीके से तरतीब दी जाती है और ठीक जगह पर रक्खा जाता है ।

अध्यापक का काम, दैनिक साधनों की चीज़ों में ऊपरोक्त सब गुण देखना है।

इन साधनों को सिखाने के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्येक साधन के करने के जितने पद हैं उनका विश्लेषण करे और फिर बालक के सन्मुख इन पदों के दर्शन बहुत धीरे २ स्पष्ट और पूर्ण रूप से स्वयं करके दिखाये। पदों के कराते समय पूर्णताः स्पष्ट मधुर और स्वाभाविक ध्वनि में उनको समझाता जाए। इसके पश्चात् अध्यापक को एक, दो बच्चों से वही साधन करवाना चाहिए और जहां कहीं थोड़ी बहुत बताने की जरूरत पड़े वहां सहायता देनी चाहिए। अन्त में साधन के मुख्य मुख्य पदों को दोहरा देना चाहिए। कोई भी दैनिक साधन करने से पहले बच्चों का सहयोग आवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। बालक को सकेत द्वारा क्रियान्वित किए जाने वाले साधन की ओर अग्रसर करना चाहिए । यदि किसी बालक को दैनिक साधन के पदों की समझ न आवे तो कुछ समय के लिए उसे छोड़ देना

दैनिक क्रियाओं के साधन

मॉण्टेसोरी स्कूल में बालक की दैनिक क्रियाओं के करने की प्रेरणा को पूर्ण किया जाता है। उसे अपनी क्रियाओं की त्रुटियों को जानने और उन पर प्रभुत्व पाने का विशेष अवसर मिलता है।

बटन खोलने-बन्द करने का साधन और मोती पिरोने का साधन (पृ० १०८)
(ए. एम. आई. स्वीकृत देहली मॉण्टेसोरी स्कूल, फ़िरोज़शाह रोड)
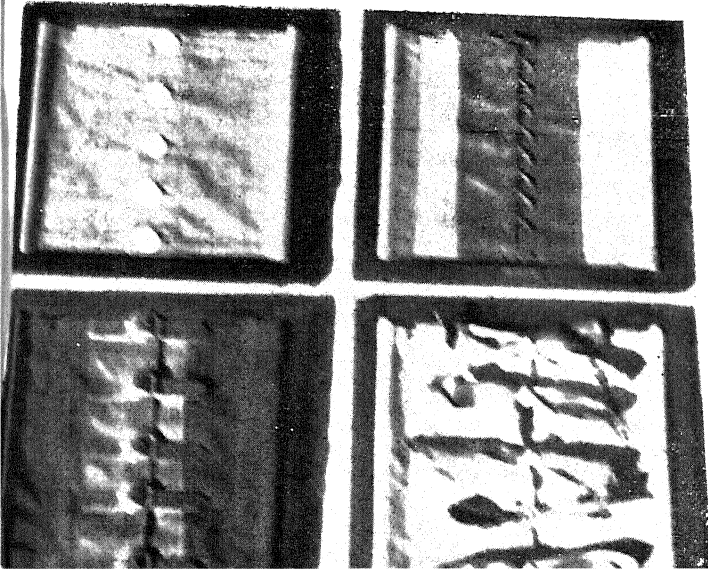
ऊपर—
बटन फ्रेम और लेस फ्रेम।
नीचे—
बक्कल फ्रेम और बो फ्रेम (पृ० १०८)

चाहिए। और फिर कोई दूसरा अवसर पाकर उसे उत्साह और चाह के साथ उसी साधन को दोहराना चाहिए। अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि बालक को इन साधनों में पूर्णता प्राप्त करनी है। इस लिए उसे बालक के थोड़ा बहुत पर्याप्त मात्रा में क्रिया ठीक कर लेने पर भी सतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। पुनः अध्यापक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बालक चीज़ों को उन्हीं दैनिक साधनों के लिए प्रयोग में लाये जिस के लिए वह नियुक्त की गई हैं। यदि बालक उनका दुरुपयोग करे तो उसे एक दम बन्द कर देना चाहिए।

अध्यापक को किस प्रकार दैनिक साधनों का विश्लेषण करके उसका प्रदर्शन करना चाहिए, यह स्पष्टीकरण निम्नलिखित दृष्टान्तों से किया गया है :

१—हाथ धोने का साधन

मान लीजिए कि बालक को हाथ धोने का दैनिक साधन सिखाना है। सर्वप्रथम अध्यापक को उन चीज़ों का सूची पत्र बना लेना चाहिए और देख लेना चाहिए कि सब चीजें हैं या नहीं। हाथ धोने के साधन के लिए यह यह चीज़ आवश्यक हैं—चिलमची, जिसमें निशान लगे हों। पानी का जग, तौलिए, साबुनदानी में साबुन, पानी पोंछने के लिए कपड़ा, चिलमची सुखाने के लिए कपड़ा, हाथ धोने वाले स्टैंड के पीछे शीशा। अध्यापक को प्रदर्शनी में निम्नलिखित पद दिखाने चाहिए:—(१) बाहें चढ़ा लेनी चाहिए। (२) तौलिया उठा कर एक तरफ़ रख लेना चाहिए (३) जग उठा कर चिलमची में लाइन तक पानी डाल लेना चाहिए। (४) जग को चिलमची से तब तक न हटाना चाहिए जब तक उस की आख़री बून्द भी चिलमची में न गिर जाए। (५) जग को अपनी जगह पर चिलमची के पीछे रख दिया जाए। (६) साबुन साबुनदानी में से एक हाथ से निकाला जाय और दूसरा हाथ पानी में अच्छी तरह से डुबोया जाय। (७) भीगा हुआ हाथ बाहर निकाल कर उस में साबुन रखा जाए और दूसरा हाथ अच्छी तरह से पानी में डुबोया जाए। (८) दोनों हाथों पर आगे और पीछे अच्छी तरह से साबुन लगाया जाए। (९) साबुन को पानी में डुबोया जाए ताकि उस के ऊपर की झाग उतर जाए (१०) अब साबुन को साबुदानी में रख दिया जाए। (११) हाथ पर लगे साबुन को उंगलियों और उनके बीच में लगाया जाए। (१२) हाथों को पानी में डाला जाए और प्रत्येक उंगली को अच्छी तरह से साफ़ किया जाए। (१३) अब हाथों को

बाहर निकाल लिया जाए और उन्हें चिलमची के ऊपर तब तक रक्खा जाए जब तक पानी की बून्दे खत्म न हो जाए। (१४) तौलिए को उठाया जाए और फिर खोला जाय। (१५) हाथों को और प्रत्येक उगंली को और उगलियों के बीच के स्थानों को पोंछा जाय। (१६) अब तौलिए को अपनी जगह पर रखा जाय (१७) चिलमची का पानी गिरा दिया जाय और उसे साफ़ कर लिया जाय। (१८) साफ़ करने के पश्चात् उसे मेज़ पर रख कर कपड़े से सुखा लिया जाय (१९) अब चिलमची और अन्य चीज़ों को एक एक करके उठाया जाय और हाथ धोने वाले स्टैंड को सुखाया जाय। (२०) पानी के जग को भर लिया जाय और उसे अपनी जगह पर रखा जाय।

इस साधन में पानी गिराने या कपड़े गीले करने से अपने आप को बचाना है।

२—बूट पालिश का साधन

इस साधन के लिए एक छोटे डिब्बे में निम्नलिखित सामग्री होनी चाहिए—पालिश की डिब्बी, सख्त ब्रुश जिसके द्वारा बूट पर चिपकी हुई मिट्टी हटाई जा सके। दान्तों वाला ब्रुश जिस के शुरू के बाल ऊंचे हों ताकि ऊंचे बालों पर पालिश लगाने से पालिश की मात्रा का अन्दांजा लग सके। तीसरा ब्रुश बूट की पालिश को चमकाने के लिए हो। एक पैड। एक मोम जामा अलग होना चाहिए।

इस साधन को करने के लिये यह क्रिया आवश्यक हैं। (१) पहले पहल मोम-जामा लाया जावे (२) उसे बिछाया जावे (३) बूट पालिश की सामग्री वाले डब्बे को लाया जावे (४) इस डब्बे को अपनी बांई ओर और मोम-जामा के ऊपर वाले भाग पर रखा जावे। (५) बूट को अपनी बांई ओर परन्तु मोम-जामे के नीचे वाले भाग पर अपने समीप रखा जावे। (६) डिब्बे में से वस्तुओं को एक एक करके निकाल कर दाएं से बाएं इस परिपाटी में रखा जावें—सख़्त ब्रुश, दान्तों वाला ब्रुश, पालिश की डिब्बी, चमकाने वाला ब्रुश, पैड। (७) अब बूट में बांया हाथ डाल कर उठा लिया जावे। (८) तसमें निकाल लिए जावें। (९) सख़्त ब्रुश से बूट की मिट्टी को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हटा दिया जावे। (१०) सख़्त ब्रुश को वापिस डब्बे में डाल दिया जावे। (११) और बूट को मोम-जामें पर रखा जावे। (१२) पालिश की डिब्बी को बांए हाथ में पकड़

कर दांए हाथ से उसका ढक्कन खोला जावे। (१३) ढक्कन को नीचे रख दिया जावे। (१४) दान्तों वाले ब्रुश पर पालिश को लगा लिया जावे और फिर पालिश की डिब्बी को नीचे रख दिया जावे। (१५) बूट में बांया हाथ डालकर फिर उठाया जावे और फिर एक सिरे से दूसरे सिरे तक पालिश किया जावे। (१६) इस ब्रुश को वापिस डब्बे में डाल दिया जावे। (१७) पालिश की डिब्बी को भी डब्बे में डाल दिया जावे। (१८) अब तीसरे ब्रुश से बूट को समतल और लम्बे रूप से ब्रुश किया जावे। यह ध्यान रहे कि बूट शरीर के साथ न लगे।

अब ब्रुश को डिब्बे में डाल दिया जावे। पैड को लेकर बूट को चमकाया जाए। फिर पैड को डिब्बे में डाल दिया जाए।

अब डिब्बे को वापिस अपनी जगह पर रख दिया जावे। बूट को अपनी जगह पर रख दिया जावे। मोमजामे को साफ़ करके उसे वापिस अपनी जगह पर रख दिया जावे।

बालक को इस साधन के करने में यह देखना है कि वह बूट का कोई हिस्सा बिना पालिश किए तो नहीं छोड़ गया या उसने अपने कपड़ों को पालिश तो नहीं लगा ली।

३—नैपकिन तह करने का साधन

इस साधन के लिए ऐसे नैपकिन ट्रे में रखने चाहिएं जिनके माध्यिक रेखाएं कसीदे से कढ़ी हुई हों।

इस साधन की क्रिया यह हैः—(१) ट्रे में से एक नैपकिन दाएं हाथ के अंगूठे और उगंलियों के बीच उठा कर लाया जावे। (२) इसे मेज़ पर रख दिया जावे। (३) फिर अध्यापक बैठ जावे। नैपकिन को जल्दी से परन्तु ठीक प्रकार से मेज़ पर ऐसे फैलाया जावे कि उलेड़ी ऊपर आवे। (५) अब दांए हाथ से नैपकिन के दाएं ऊपरी कोने को अंगूठे और पहली उगंली में पकड़ा जावे (६) इस के पश्चात् बाएं हाथ से नैपकिन के बाएं ऊपरी कोने को अंगूठे और पहली उगंली में पकड़ा जावे। (७) अब दोनों हाथों वाले पकड़े कोनों को अपनी ओर वाले कोनों की ओर लाया जावे। (८) पहले दाएं हाथ वाले कोने को नीचे दाएं हाथ वाले कोने पर रखा जाए। (६) और छोड़ दिया जाए। (१०) इसी प्रकार बाएं हाथ की क्रिया की जाए। (११) अब तह को दाएं हाथ से जमा दिया जाए।

(१२) अब बांएं ओर के ऊपरी कोने को दांए हाथ के अंगूठे और पहली उगंली से ऐसे पकड़ा जावे कि अंगूठा नीचे हो और उंगली ऊपर। (१३) इसी प्रकार बांए हाथ वाले नीचे के कोने को बांए हाथ के अंगूठे और पहली उगंली से पकड़ा जावे। (१४) अब दोनों पकड़े हुए कोनों को दांई ओर ला कर उन के उपरोक्त कोनों पर रख दिया जाए। (१५) अब हाथ छोड़ दिया जाए। (१६) अब तह जमा दी जाए (१७) अब नैपकिन वापिस रख दिया जावे।

इसी प्रकार झाड़न को तह करने की क्रिया है।

४—फ़र्श पर पोचा देने का साधन

इस साधन के लिए एक पोचे का कपड़ा और पानी की बाल्टी की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए यह क्रिया उचित हैं।

(१) कमीज़ की बाहें ऊपर चढ़ा लीजिए। पोचे वाले कपड़े को एक कोने में रखिए (२) जहां पानी बह कर आ रहा हो कपड़े को उधर खेंचिए। (३) चौड़ाई में तह कर के पट्टी सी बना लीजिए (४) फिर इसे बाल्टी के मध्य में ले आइए (५) और निचोड़ दीजिए (६) यह गति दोहराते जाइए जब तक सारा पानी सुखा न लिया जावे। (७) तीसरी विधि द्वारा कपड़े को नैपकिन की तरह तह कीजिए और उसके साथ पानी की जो बून्दें इधर उधर रह गई हैं पोंछ दीजिए। (८) अब बाल्टी का पानी गिरा दीजिए (९) अब बाल्टी को धो लीजिए। (१०) अब कपड़े को बाल्टी में अच्छी तरह धो लीजिए (११) कपड़े को निचोड़ लीजिए। कपड़े को लम्बरूप पकड़ कर झाड़िए (१२) और बाल्टी खाली कर लीजिए। (१३) अब कपड़े को सूखने के लिए डाल दीजिए।

इस साधन में यह ख्याल रखना है कि फ़र्श पर कहीं पानी न रह जावे और न ही पानी की बून्दें बाल्टी के बाहर गिराई जावें। यह साधन $2\frac{1}{2}$ से $3\frac{1}{2}$ साल के बच्चों के लिए उपयोगी है।

५—बटन बन्द करने व खोलने का साधन

यह साधन बटन फ्रेम से किया जाता है। इस बटन फ्रेम की दाईं ओर बटनों की पट्टी होती है और बांई ओर काजों की पट्टी होती है। इस साधन की क्रिया इस प्रकार की जाए।

(१) बालक को अपने बांए ओर बिठा लेना चाहिए। (२) अब फ्रेम के सब बटन जल्दी २ और ठीक तरह से खोल दीजिए। (३) बटनों वाली पट्टी के ऊपरी भाग को दांए हाथ से इस प्रकार पकड़िये कि अंगूठा ऊपर और पहली उगंली नीचे हो। (४) इसी पट्टी के नीचे वाले भाग को बाएं हाथ से इस प्रकार पकड़िये कि अंगूठा नीचे और पहली उगंली ऊपर हो। (५) अब इस पट्टी को अन्दर की ओर ले आइए और हाथ छोड़ दीजिए। (६) काजों वाली पट्टी के ऊपरी भाग को दांए हाथ से इस प्रकार पकड़िये कि अंगूठा नीचे और पहली उंगली ऊपर हो। (७) इसी के नीचे वाले भाग को बांए हाथ से इस प्रकार पकड़िये कि अंगूठा ऊपर और पहली उगंली नीचे हो। (८) इस काज वाली पट्टी को बटनों वाली पट्टी पर ले आइए और हाथ छोड़ दीजिए। (६) अब काज वाली पट्टी को बांए हाथ से ऊपर उठाइये ताकि बटन दिखाई दे। (१०) अब बटन को दांए हाथ से लम्बरूप पकड़िये। (११) काज को बटन के ऊपर ले आइए ताकि बटन काज के भीतर से थोड़ा निकल आये। (१२) अब बायां हाथ छोड़ दीजिए। (१३) बटन का निकला हुआ भाग बांए हाथ में पकड़िये और दायां हाथ छोड़ दीजिए। (१४) अब दाएं हाथ से काज को दबाइए। (१५) बटन को सीधा कर दीजिए।

इसी प्रकार बकल लगाने, प्रैस बटन लगाने व हुक बटन लगाने के साधन की क्रिया का विश्लेषण करके बालक को दिखाया जाय।

६—लेस बांधने का साधन

बालक अपने बूट के तसमें बांधने का बहुत इच्छुक पाया जाता है। स्कूल बालक की इस इच्छा में सहायता करता है। माण्टेसोरी स्कूलों में ऐसे लेसों वाले फ्रेम होते हैं जिनके द्वारा बालक तसमें बान्धना सीखता है। लेसों वाले फ्रेम के साथ बताने की क्रिया यह है—

(१) पहले पहल आप लेस को फ्रेम के सबसे नीचे वाले छेदों में से नीचे से ऊपर निकालिए। (२) और दोनों तरफ़ से लेसों को बराबर कर लीजिए। (३) अब दांई ओर वाली लेस को बांई ओर रख लीजिए (४) और बांई ओर वाली लेस को दांई ओर रख लीजिए। (५) अब दांई ओर वाली लेस को बांए हाथ में पकड़ कर, दांए हाथ से दांई तरफ़ के चमड़े को ऊपर कीजिए और बांए हाथ से लेस नीचे से ऊपर छेद से निकालिए। (६) इसी प्रकार बांई ओर

वाली लेस दांए हाथ में पकड़ कर, बांए हाथ से बांई तरफ के चमड़े को ऊपर कीजिए और दांए हाथ से लेस नीचे से ऊपर छेद से निकालिए । (७) बारी बारी यह साधन दोहरायें और अन्त में बो बना लीजिए। बो बनाने की विधि अगले साधन में दी गई है।

७—बो बनाने का साधन

दो रंग के १२, १२ इंच लम्बे रिबनों के फ्रेम के साथ यह क्रिया कीजिए :

(१) दोनों तरफ़ के रिबनों को सीधा करके दोनों हाथों में पकड़िये। (२) अब बांए हाथ वाले रिबन को दायें हाथ से पकड़ कर दांई ओर ले आईये। (३) और दायें हाथ का रिबन बांई ओर ले जाईये। (४) दोनों रिबनों को दो ढाई इंच दूर बीच से पकड़ीये। (५) दायें हाथ वाले रिबन को नीचे वाले के ऊपर ले आईये। (६) गांठ लगा कर खेंच लीजिये। (७) अब छोटी तरफ़ से एक लूप गांठ के नजदीक बनाईये। (८) बांई ओर के रिबन को लूप के ऊपर ले जाकर उसके अन्दर डाल दीजिये। (९) दोनों लूपों को ऐसे खेंचिए कि दोनों किनारे कस कर बराबर हो जावें। इस प्रकार बो बन जायेगा।

सारांश

मॉण्टेसोरी स्कूलों में बालक को उसके दैनिक व्यवहार की स्वभाविक प्रेरणा को उचित रुप से शिक्षित करने के लिए विशेष विधि और ध्यान द्वारा साधन करवाए जाते हैं। अर्थात् बालक को एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पानी डालने, फ़र्श साफ करने, बटन लगाने, हाथ धोने, मेज़ साफ़ करने, नैपकिन तह करने, बक्कल लगाने, इत्यादि सब साधनों में ट्रेनिंग दी जाती है। इन साधनों द्वारा बालक अपने शारीरिक अंगों की गति पर संयम पाना सीखता है। अपने अंगों की सहयोग-क्रिया द्वारा काम करना सीखता है। वह इन क्रियाओं में प्रभुत्व पा कर स्वतन्त्रता का अनुभव करता है।

१६

इन्द्रिय शिक्षा

बालक विश्व की घटनाओं को जानने के लिए अपनी इन्द्रियों का जन्म दिन से ही प्रयोग करता है। बालक चीज़ों के रंग, रूप, लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई, स्वाद, सुगन्ध, खुरदरेपन, या नर्मपन, बोझ आदि गुणों को इन्द्रियों द्वारा ही जानता है। इन चीज़ों का अनुभव और ज्ञान उसके मन की सामग्री बनती है जिसे बालक बुद्धि द्वारा वर्गों में बांट तथा स्पष्ट करके अपने मन का विकास करता है।

मॉण्टेसोरी शिक्षा इन्द्रिय विकास में भी सहायक होती है। वह बालक को यह शिक्षा उत्तम रूप से देती है। बालक के इन्द्रिय अनुभवों और ज्ञान साधनों को विधि पूर्वक वैज्ञानिक रूप से बढ़ाती है तथा स्पष्टीकरण भी करती है। वह उनमें परिपाटी और शिष्टता का विकास करती है।

इन्द्रिय शिक्षा के अनेक लाभ हैं—

(१) इन्द्रिय साधनों द्वारा चीज़ों के भेदों के बोध विकसित और तीव्र होता है। बालक इन्द्रिय साधनों द्वारा चीज़ों के रंग रूप वज़न, स्वभाव, सुगन्ध, ताप लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि के भेदों के परखने की शक्तियों का विकास करता है।

(२) मॉण्टेसोरी इन्द्रिय साधनों द्वारा बालक अपनी इर्दगिर्द की घटनाओं को वैज्ञानिक स्वभाव से देखना सीखता है।

(३) मॉण्टेसोरी साधनों की सामग्री के प्रयोग द्वारा शरीर की क्रियाओं में शिष्टता आ जाती है। बालक चीज़ें उठाने, या निकालने रखने, या डालने में शिष्टता दिखाता है।

(४) इन्द्रिय साधनों द्वारा बालक के इन्द्रिय दोष सहज ही प्रकट हो जाते हैं, जो बिना इन साधनों के चिरकाल तक लापता रह सकते हैं। इन्द्रिय दोष

का जल्दी पता लग जाना एक बहुत बड़ा लाभ है क्योंकि फिर इसे सहज ही हटाया जा सकता है ।

(५) इन्द्रिय साधनों द्वारा चीजों के गुणों की परख बढ़ती है। परख के उन्नत होने से चीज़ों के गुणों को अनुभव करने और जानने की शक्ति बढ़ती है ।

(६) इन्द्रिय साधनों द्वारा बालक चीज़ों की परस्पर एकता और मेल या अनमेल का अनुभव करता है । यह अनुभव उसमें सुन्दरता बोध के विकास में सहायक बनते हैं ।

(७) मॉण्टेसोरी इन्द्रिय साधन द्वारा बालक को यह शिक्षा मिलती है कि कौन से इन्द्रिय-अनुभव मुख्य हैं और कौन से गौण हैं। कौन से स्थायी हैं और कौन से आकस्मिक हैं । ऐसे भेद द्वारा वह अपने इन्द्रिय अनुभवों को परिपाटी दे सकता है । वह उन्हें उनकी महत्ता के अनुसार अपने मन में श्रेणी बद्ध कर सकता है । उन में स्पष्टता ला सकता है ।

(८) मुख्य और गौणता का भेद बालक के नीति बोध के विकास में सहायक बन सकते हैं।

(९) इन इन्द्रिय साधनों में से ध्यान की एकाग्रता होती है। इस एकाग्र-चित्तता के द्वारा बालक की बुद्धि समता का विकास होता है । चीज़ों की परस्पर तुलना के साथ बालक निश्चय करना सीखता है । इससे उसकी निर्णयशक्ति बढ़ती है ।

उपरोक्त सारे वर्णन से स्पष्ट है कि इन्द्रिय साधनों द्वारा बालक के समस्त व्यक्तित्व का विकास होता है । इस लिए इसका बालक की शिक्षा में एक मुख्य स्थान समझना चाहिए ।

इन्द्रिय विकास के साधनों की मॉण्टेसोरी सामग्री के निम्नलिखित गुण हैं—

(१) प्रत्येक साधन के लिए पृथक सामग्री होती है अर्थात् रंगों के भेद के लिए पृथक सामग्री है, लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के भेद के लिए अलग सामग्री होती है, ताप के लिए अलग, इत्यादि ।

मॉण्टेसोरी स्कूल में मॉण्टेसोरी सामग्री का प्रयोग

२. इन्द्रिय साधनों की सामग्री ऐसी होती है कि बालक शारीरिक क्रियाएं (motor activities) कर सके ।

३. इन्द्रिय सामग्री ऐसी होती है कि बालक स्वयं एकाग्रचित होता जाता है ।

४. यह सामग्री बालक को प्रयोगों में उसकी अशुद्धियों को स्वयं अनुभव कराती है ।

५. यह सामग्री सीमित होती है। सामग्री के सीमित होने से बालक अपने वातावरण पर संयम का अनुभव करता है। वह अपने इर्द गिर्द ऐसी सामग्री पाता है जिसे वह श्रेणीबद्ध कर सकता है और उस पर प्रभुत्व पा सकता है।

६. इन्द्रिय सामग्री अलमारियों में रखी हुई होती है और यह अलमारियां सदा खुली रहती हैं। इनको तालों द्वारा बन्द नहा किया जाता।

मॉण्टेसोरी विधि में दस इन्द्रियों के साधनों की सामग्री का प्रबन्ध होता है, अर्थात् दृश्येन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय, भारेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, सुगन्धेन्द्रिय, मांसल (muscular) इन्द्रिय, तापेन्द्रिय, पीड़ा बिन्दु, Stereognostic sense.

दृश्येन्द्रिय के विकास के लिए सामग्री और साधन

(क) *गट्टा पेटी*—इस सामग्री की तस्वीर आप सामने के पृष्ठ पर देखें (न० १, २, ३, ४,) इन चारों गट्टा पेटियों की लम्बाई ५५ सें० मी० ऊँचाई ६ सें० मी० और चौड़ाई ८ सें० मी० है। प्रत्येक पेटी में दस दस गोल छेद होते हैं और प्रत्येक छेद में उसके बराबर का दंडगोल होता है ।

१—पहली पेटी के छेद और दंडगोल में केवल घेरे का अन्तर होता है । इनकी ऊँचाई बराबर की अर्थात् ५ से० मी० होती है। सब से छोटे घेरे वाले दंड-गोल का घेरा ·५ से० मी० का होता है और इसके बाद प्रत्येक दंडगोल का घेरा ·५, से० मी० से बढ़ता जाता है सब से बड़े का घेरा ५ से० मी० का होता है।

२—दूसरी पेटी में दंडगोलों का भेद केवल ऊचाँई का होता है । इन सब दंडगोलों का घेरा बराबर का होता है। सब से छोटे की ऊचाँई ·५ से० मी० की होती है और प्रत्येक बाद वाले दंडगोल की ऊचांई ·५ से० मी० से

बढ़ती जाती है। इस प्रकार सब से बड़े दण्डगोल की ऊंचाई ५ से० मी० हो जाती है।

३—तीसरी पेटी के दंडगोलों में घेरे और ऊँचाई दोनों का भेद होता है। सब से छोटे दण्डगोल का घेरा भी ·५ से० मी० का होता है और ऊंचाई भी। प्रत्येक बाद वाले दंडगोल का घेरा और ऊंचाई ·५ से० मी० के हिसाब से बढ़ती जाती है। इस प्रकार सब से बड़े दंडगोल का घेरा और ऊंचाई दोनों, ५ से० मी० की हो जाती हैं।

४—चौथी पेटी के दंडगोल तीनों विस्तारों में एक दूसरे से विपरीत रूप में भिन्न होते जाते हैं, अर्थात् जहां सब से छोटा दण्डगोल ·५ से० मी० ऊंचा है वहां उसका घेरा ५ से० मी० होता है। इसी तरह सब से बड़ा दंडगोल जहां ऊंचाई में ५ से० मी० है वहां वह घेरे में ·५ से० मी० होता है। यही ऊंचाई और घेरे के विपरीत अनुपात बाकी दंडगोलों में भी पाया जाता है।

प्रदर्शनीय—बालक को आप अलमारी के पास ले जाइये जहां गट्टा पेट्टियां रखी हुई हैं। पहली पेटी को दोनों हाथों से पकड़ कर मेज़ पर ले आइए। बालक को बांई ओर बिठा दीजिए। एक एक करके दंडगोलों को अंगूठे और पहली दो उगंलियों से मुढ पकड़ कर बाहर निकालिए लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि निकालने और रखने में आवाज़ न हो। दंडगोलों को मिले जुले रूप में निकाला जावे। अब कोई सा दंडगोल उठाइए। परन्तु यह दंडगोल सब से बड़ा या सब से छोटा न हो अब इस दडगोल को देखिए, पेटी के छेदों को देखिए और दोनों की तुलना कीजिए। आप के व्यवहार से यह स्पष्ट हो कि आप आँखें जमा कर तुलना कर रहे हैं और इस निर्णय पर पहुँच रहे हैं कि हाथ में पकड़ा दंडगोल किस छेद में डालना चाहिए। दंडगोल को छेद में डालते समय आवाज़ न हो। इस विधि से एक एक करके सब दंडगोल डाल दिए जावें। इस साधन को तब तक दोहराया जावे जब तक कि बालक उत्साहित होकर स्वयं न करना चाहे। जब बालक क्रिया साधन करे तो आप उसमें रुचि दिखावें, ध्यान दें और जब बालक ठीक करता नज़र आवे तो चुपके से उसे छोड़ कर चले जावें।

दृश्येन्द्रिय विकास की सामग्री.
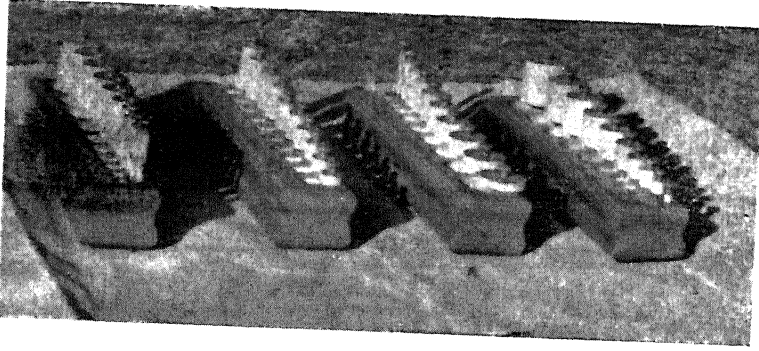
गट्टा पेटी। बाईं ओर से – नं० १, २, ३, ४ (पृ० ११३)
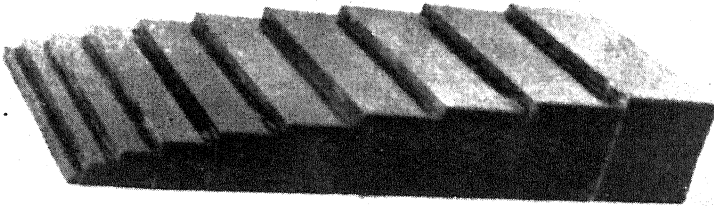
६—चौड़ी सीढ़ी (पृ० ११७)
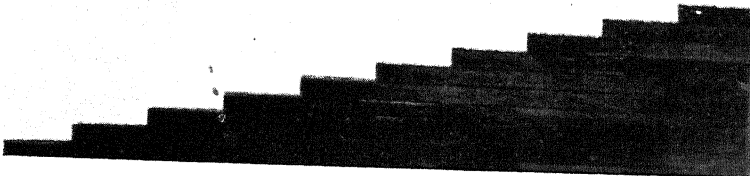
७— लम्बी सीढ़ी।

जोड़ी क्रिया—यह साधन अब दो पेटियों के दंडगोलों को एक ही समय में लेकर किया जावे। यही साधन तीन पेटियों के दंडगोल लेकर एक ही समय में किया जावे। फिर यही साधन चारों पेटियों के दंडगोलों को लेकर किया जाय।

२—यह जोड़ी क्रिया साधन दूसरी विधि से भी किया जा सकता है। दंडगोल को लेने के स्थान पर और उसका छेद ढूढने की बजाय पहले पेटी का कोई छेद लें और उसका उपयोगी दंडगोल ढूंढें। यह साधन चारों पेटियों के साथ किए जा सकते हैं।

३—दंडगोलों को पेटी में से दरी पर निकाल लीजिए और इन्हें मिला-जुला दीजिए। अब इन्हें छेदों को देखते हुए तारतम्य में जोड़िये। जोड़ने के पश्चात् उन्हें एक एक करके पेटी के छेदों में डालिए। ऐसा करने से अशुद्धि का एक दम अनुभव हो जावेगा। यही साधन सब पेटियों के साथ किए जावें।

४—दंडगोलों को पेटी में से निकाल कर दरी पर रख लीजिए। अब पेटी को वहां से हटा कर छिपा दीजिए। दंडगोलों को तारतम्य में जोड़िए। अब पेटी को ला कर, दंडगोलों को पेटी के छेदों में डाल कर देखिए। यदि दंडगोलों को क्रमानुसार परिपाटी देने में अशुद्धि हुई है तो इससे स्पष्ट हो जावेगी।

५—दंडगोलों को पेटी में से निकाल लीजिए। पेटी को दूर रखिए, उसका छेद नियुक्त कीजिए और उसके अनुसार दंडगोल ढूढंने के लिए दरी पर आइए। दंडगोल ढूंढ कर उसे पेटी की ओर ले जाइए और छेद में डालिए। यह क्रिया स्मरण शक्ति का साधन बन जाती है।

६—स्मरण शक्ति के साधन को इस प्रकार और कठिन किया जा सकता है। दंडगोलों को पेटी में से निकालिए उन्हें भिन्न २ स्थानों पर बिखरा दीजिए। अब पेटी के किसी एक छेद में उचित दंडगोल लाकर डालिए। इस प्रकार सब छेदों में एक एक करके दंडगोल डालिए।

७—दंडगोलों को जगह जगह पर बिखरा दीजिए और पेटी के छेदों की सहायता के बिना उन्हें क्रमानुसार जोड़िए।

इन साधनों द्वारा बालक लम्बाई चौड़ाई और मोटाई को परखना सीखता है। इसके अतिरिक्त इन साधनों में लिखने वाली दो उंगलियां और

अंगूठा मिल कर काम करते हैं। इससे सीखने में सहायता मिलती है।

(ख) मीनार सामग्री—बालकों के लिए दूसरी दृश्येन्द्रिय विकास सामग्री मीनार है। यह सामग्री गुलाबी लकड़ी के दस चौकोन घनों से समूहित होती है। सब से छोटे घन की तरफ़ें एक से० मी० होती हैं और प्रत्येक बाद के घन की तरफ़ें एक एक से० मी० से बढ़ती जाती हैं अर्थात सबसे बड़ा घन १०×१०×१० से० मी० का होता है। (इसकी तस्वीर सामने वाले पृष्ठ नम्बर ५ पर देखिये) बालक इन लकड़ी के घनों को दरी पर फैला लेता है और उनको एक मीनार के रूप में जोड़ता है।

यह साधन दरी पर होता है। इसलिए दरी बिछा लेनी चाहिए फिर बालक को अलमारी के पास ले जाइए जहाँ घन रखे हैं। एक एक करके घनों को ले आइए। घनों को चारों उगंलियों और अंगूठे से पकड़ कर उठाइए। जब सब घन आ चुके हों तो उन्हें मिला जुला दिया जावे। अब घनों को एक एक करके अपनी दाईं ओर रखिए और सब से पहले सब से बड़े घन को उठाइए। उठाने से पहले आप अपने व्यवहार से यह स्पष्ट रूप से दिखलाइए कि आपने एकाग्रचित हो कर, अपनी आखों को जमा कर सब से बड़े घन को उठाने का निश्चय किया है। इसी प्रकार आप दूसरे दर्जे वाले बड़े घन पर निगाह जमाइए। ध्यान रहे कि ऐसा करते समय आवाज़ न आवे और प्रत्येक घन बिल्कुल केन्द्र में रखा गया हो। अपनी इस केन्द्र में रखने वाली क्रिया को इस प्रकार कीजिए कि आप का मानसिक यत्न स्पष्ट दीख पड़े। इस साधन को तब तक दोहराइए जब तक बालक स्वयं करने का उत्साह दिखावे।

इस सामग्री के प्रयोग का साधन यह है :—(१) बालक की आखें बन्द करवा कर एक घन को निकाल लीजिए। फिर उसकी आखें खुलवाइए और उससे पूछिये कि यह घन कहां से उठाया। फिर घन को स्वयं या बालक से रखवाइए।

(२) बालक की आखें बन्द कर दीजिए। एक घन निकाल लीजिए फिर बालक की आखें खुलवाइए और उससे पूछिए कि मीनार में किस जगह का घन गुम है।

(३) घनों को जगह जगह पर बिखरा दीजिए और बालक से कहिए कि वह घनों को क्रमानुसार लाकर मीनार के रूप में जोड़े। इस साधन द्वारा

दृश्येन्द्रिय विकास की सामग्री

५—मीनार सामग्री (पृ० ११६)
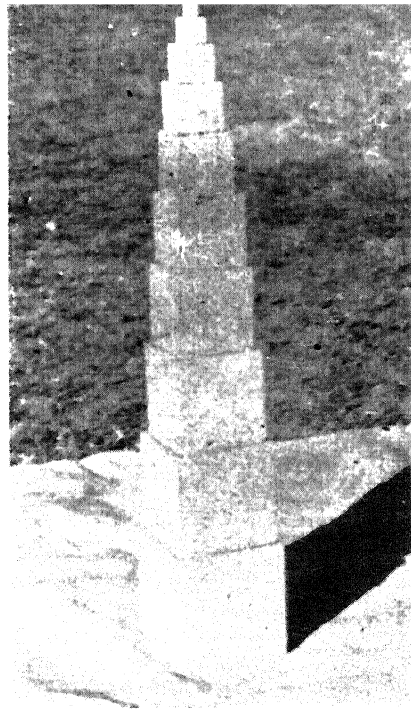
दृश्येन्द्रिय के साधन का एक चित्र।
(ए. एम. आई. स्वीकृत देहली मॉण्टेसोरी स्कूल, फ़िरोज़शाह रोड)

बालक की स्मरण शक्ति भी तीव्र होती है।

(ग) चौढ़ी सीढ़ी की सामग्री (छेदित घन)—यह सामग्री भूरे रंग की लकड़ी के दस चौकोन घनों से समूहित होती है। घन की लम्बाई २० से० मी० होती है और उसकी समचतुर्भुज वाली तरफ १० से० मी० से आरम्भ होकर के कम होती जाती है। तथा सबसे छोटे घन की समचतुर्भुज की तरफ एक से० मी० ही रह जाती है। (इसकी तस्वीर न० ६ देखिए) बालक को सामग्री-अलमारी के पास ले जाकर चौड़ी सीढ़ी की सामग्री ले आइए। एक एक छेदित घन को अपनी जगह से उठा कर दरी पर मिलाजुला कर रखिए। छेदित घनों को उठाते व रखते समय कोई आवाज़ न आनी चाहिए। अब छेदित घनों को उठाकर एक तरफ़ रख दीजिए ताकि दरी पर जगह खाली हो जावे। अब सब से बड़े छेदित घन को उठाइए। उठाने से पहले आप अपने व्यवहार से यह स्पष्ट करें कि आप ने सोच समझ कर सब से बड़ा छेदित घन ढूढां है और ढूढं कर उठाया है। अब दूसरे दर्जे वाले बड़े छेदित घन को उठाइए और पहले के साथ दोनों हाथों से ऐसे जमाइए कि वह एक लाइन में आजायें। इस तरह बाकी छेदित घनों को जोड़िए जिनसे सारे घन एक चौड़ी सीढ़ी का रूप लें।

इस सामग्री के साथ वही तीन साधन किए जावें जो मीनार की सामग्री के साथ किए जाते हैं।

(घ) लम्बी सीढ़ी की सामग्री—इसकी सामग्री दस फट्टियों से समूहित होती है। इन सब फट्टियों की चौड़ाई और मोटाई ४, ४ से० मी० की होती है। सब से छोटी की लम्बाई १० से० मी० की होती है और बाद की सब १०, १० से० मी० से बढ़ती जाती है। सबसे बड़ी की लम्बाई सौ से० मी० की हो जाती है। इन फट्टियों का रंग लाल होता है।

साधन आरम्भ करने से पहले इस सामग्री को अलमारी से दरी तक लाने की विधि वही है जो चौड़ी सीढ़ी या मीनार या दंडगोलों के लाने की है। इस में भी उसी प्रकार एकाग्रचित होकर सबसे लम्बी फट्टी को अपनी आखों द्वारा ढूढं लीजिए और उसे उठाकर अलग रखिए। फिर दूसरे दर्जे की सब से बड़ी फट्टी को उठाइए और उसे पहली के साथ जोड़िए। जोड़ते समय ध्यान रहे कि फट्टियां बांई ओर की तरफ़ से बिल्कुल बराबर हों। इसी प्रकार सारी सीढ़ी लगाइए। इस साधन को तब तक दोहराइए, जब तक कि बालक स्वयं इसे

करने की इच्छा न प्रकट करे ।

इस सीढ़ी के भी तीन साधन वही है जो चौड़ी सीढ़ी के साथ किए जाते हैं।

चौथा साधन यह है—सबसे लम्बी फट्टी लीजिए और इसे अलग रख दीजिए। अब कोई दूसरी फट्टी उठा कर इस के नीचे लगाइए । अब आपने एकाग्रचित होकर ऐसी फट्टी ढूढंनी है जिसको यदि दूसरी के साथ जोड़ दिया जावे तो दोनों साथ मिल कर पहली की लम्बाई के बराबर हो जावें ।

पांचवा साधन–सब से लम्बी फट्टी लीजिए दूसरे दर्जे की सबसे लम्बी फट्टी इसके नीचे जोड़िए सब से छोटी फट्टी को इस दूसरे दर्जे की सब से लम्बी फट्टी के साथ जोड़िए ताकि ऊपर नीचे की फट्टियां बराबर हो जावें। अब तीसरे दर्जे की फट्टी लेकर सब से बड़ी फट्टी के नीचे रखिए और उसके साथ ऐसी फट्टी जोड़िए कि दोनों ऊपर नीचे की फट्टियां बराबर की हो जावें। जब पांचवें दर्जे वाली फट्टी की बारी आवेगी तो उसे ही दुबारा लीजिए क्योंकि इसे दुबारा लेने से ही यह पहली सब से बड़ी फट्टी के बराबर हो सकती है ।

छटा साधन यह है कि इन फडियों को बिखरा दिया जावे और फिर उनके साथ चौथा और पांचवां साधन किया जावे। इससे स्मरण शक्ति तीव्र होती हैं।

सातवाँ साधन—कोई भी फट्टी ले लीजिए और कोई और फट्टी ले कर इसके नीचे रखिए। इन दोनों की अन्तर तुलना करके ऐसी फट्टी ढूंढिए कि जिसके जोड़ने से इन दोनों में अन्तर न रहे ।

आठवां साधन—फट्टियों को बिखरा दीजिए और इन्हें इस प्रकार एक एक करके लाइए कि जोड़ने पर सीढ़ी बन जावे ।

इन उपरोक्त साधनों द्वारा लम्बाई के बोध तीव्रता तो आती ही है साथ में गणित सीखने की भी तैयारी हो जाती है। पुन: इन साधनों द्वारा उनकी भारेन्द्रिय भी शिक्षित होती है क्योंकि फट्टियां पकड़ने से फट्टियों की लम्बाई का बोध होता है जिसे नेत्रों के अतिरिक्त मांस पेशियां भी अनुभव करती हैं।

(च) *रंगों के भेद:*—रंगों के भेद के लिए सामग्री तीन डिब्बों में रखी जाती हैं। प्रत्येक डिब्बे में लकड़ी की चपटी रीलें होती हैं जिन के दोनों तरफ़ रिम लगी

रंगों के भेद की सामग्री
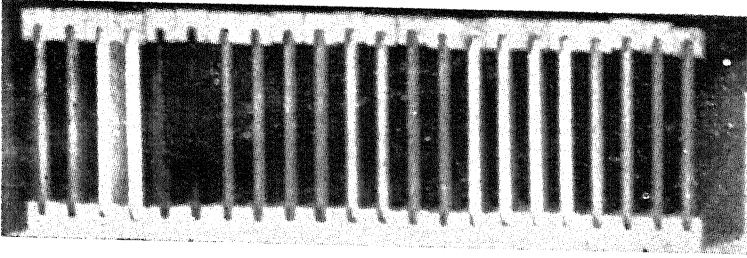
नौ रंगों तथा सफेद और काले रंग की दो-दो चपटी रीलें (पृ० ११६)
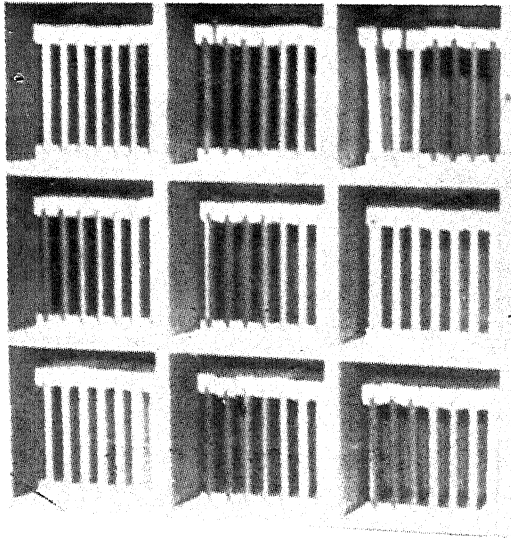
नौ रंगों के हल्के और गाढ़े भेद में सात-सात दर्जों की रीलें

हुई होती है। इन चपटी रीलों पर सिल्क के बहुत चमकदार धागे लिपटे होते हैं। पहले डिब्बे में तीन मुख्य रंगों—नीला, लाल, पीला—के दो दो चपटे रील होते हैं। दूसरे डिब्बे में ११ रंगों की दो दो चपटी रीलें होती हैं। यह ग्यारह रंग निम्नलिखित हैं—मुख्य रंग नीला, लाल, पीला, दूसरी बनावट के रंग—सन्तरी, बैन्जनी, हरा, तीसरी बनावट के रंग—गुलाबी, सलेटी, भूरा तथा सफ़ेद और काली चपटी रीलें। इस प्रकार इसमें २२ रीलें होती हैं। तीसरे डिब्बे में उपरोक्त नौ रंग की चपटी रीलें होती हैं। प्रत्येक रंग को गहरा हल्का करके सात दर्जे की रीलें होती हैं चौथी रील के रंग की गहराई मध्य दर्जे की होती हैं। दूसरे डिब्बे की सब रीलें इस मध्य गहराई की होती हैं। इस लिए तीसरे डिब्बे की चौथी रीलें और दूसरे डिब्बे की रीलें एक समान हैं।

साधन—पहले रंग के डिब्बे को अलमारी से ले आइए, कुर्सी पर बैठ जाइए, बालक को बाईं ओर बिठा लीजिए, डिब्बे को दाईं ओर रखिए। पहले लाल रंग की चपटी रील को निकालिए फिर नीले रंग की चपटी रील को निकालिये, ध्यान रहे कि इन रीलों को निकालते समय आप इन्हे किनारे से ही पकड़िये ताकि हाथ रंगों के धागों को न लगे। यह रीलें बालक के सामने रख दीजिये। अब बालक की ओर देखिए, जब वह यह आशा दिखावे कि आप और रंग के रील निकालेंगे तो आप लाल रंग की जोड़ी रील को निकालिए। साधारणतः ऐसा होता है कि बालक स्वभावतः ही अपने व्यवहार से यह स्पष्ट कर देता है कि उसने दोनों रीलों के रंगों की एक समानता को देख लिया है। अब आप नीले रंग की दूसरी जोड़ी रील को निकालिये। बालक स्पष्ट ही समानता को अनुभव करता है। बालक को आप यह दिखावें कि एक समान रंगों की पहचान बताने की विधि यह है कि उन्हें इकठ्ठा रख दिया जावे। जोड़ों को बाईं ओर रख दीजिए। यदि बालक इन रंगों की समानता की पहचान न दिखावें तो आप अपने व्यवहार से अनुभव करावें कि आप दोनों जोड़ी रीलों की तुलना करके उनकी एक समानता पर पहुँचे हैं और इस कारण इनका एक जोड़ा बनाते हैं। अब रंगों की चपटी रीलों को मिला-जुला दिया जावे और यह साधन दोहराया जावे। जब बालक आत्मविश्वास दिखावे तो उसे यह साधन करने को दिया जावे। यदि बालक रंग की रीलों को समतल रूप में रखे तो उसे रोका जावे। उसे दिखाया जावे कि एक जोड़े को दूसरे जोड़े के साथ एक लम्बरूप लाइन में रखते हैं। पहले डिब्बे की तीनों रंगों की रीलों

के साथ जुड़वें साधन किये जावें। फिर दूसरे डिब्बे की रीलों के साथ जुड़वें साधन किये जावें।

तीसरा साधन—रंगों का एक सैट अपने पास रखिये। इस का दूसरा सैट किसी दूर जगह पर रखिये, अब पहले सैट की कोई रील लीजिये। इस रंग की जुड़वीं रील दूर रखे हुये सैट में से ढूंढ कर ले आइये। ऐसे साधन से स्मरण शक्ति की पुष्टि होती है।

यदि इस स्मरण शक्ति की तीव्रता के साधन को अधिक कठिन करना हो तो एक सैट के रंगों की रीलों को अपने पास रखिये और जुड़वें सैट को इधर उधर बिखरा दीजिये। अपने सैट की रीलों में से कोई रील निकालिये और इस की जुड़वीं रील बिखरी हुई रीलों में से ढूंढ लाइये।

यह साधन सब डिब्बों के रीलों के साथ किये जा सकते हैं।

रंगों के नाम सीखने के साधन

लाल रंग के चपटी रील को ठीक किनारे से पकड़ कर निकालिये। बालक को यह रील दिखाते हुये पूर्ण स्पष्ट शब्दों में कहिये "यह लाल रंग है।" फिर हरे रंग की चपटी रील निकालिये और स्पष्ट शब्दों में कहिये कि "यह रंग हरा है" इस साधन को दोहराते रहिये ताकि बालक रंग और उसके नाम में सम्बन्ध या संग कर सके।

जब रंग और उसके नाम में संग हो जावे तो दूसरा पद आरम्भ कीजिए। बालक को आप कहिए कि मुझे लाल रंग की चपटी रील दीजिये। जब बालक आप को दे दे तो उसे अपने हाथ में ले लीजिये। इस साधन को और रंगों के साथ दोहराइये। तीसरा पद यह है कि रंगों के चपटी रीलों को सामने रख लीजिये फिर किसी एक रील की ओर संकेत करके आप बालक से पूछिये "इस रंग का क्या नाम है?"

नाम सिखाने के साधन का उद्देश्य यह है कि बालक रंगों की दुनियां का स्वामी हो जावे। किसी चीज़ का नाम जानना उस चीज पर उतना ही प्रभुत्व दे देता है जितना किसी चीज़ की मुठ को पकड़ने से मिलता है।

रंगों के भेद की सामग्री
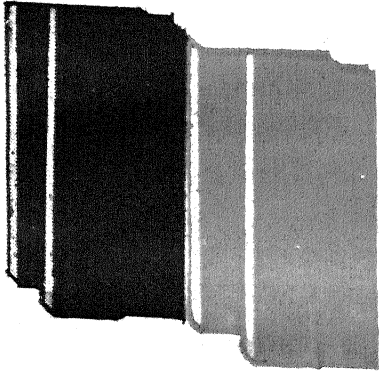
नीले, लाल और पीले रंगों की दो-दो चपटी रीलें

रंगों के हल्के और गहरेपन की परख के साधन

एक ही रंग की तीन चपटी रीलें लीजिये। एक का रंग गाढ़ा हो दूसरे का रंग बीच का हो और तीसरे का रंग हल्का। इन तीनों रीलों की तुलना करके गाढ़े रंग की चपटी रील को उठा कर उसे अलग कर दीजिये। फिर बीच के रंग की रील को उठाइये और गहरे रंग की रील के दांई ओर रखिये। फिर हल्के रंग की रील को उठाइये और मध्य रंग के साथ रख दीजिये। अपने व्यवहार से बालक को अनुभव कराइये कि आप ने रीलों को इस परिपाटी में गहरे और हल्के के दृष्टिकोण से जोड़ा है। यही साधन दूसरी विधि से भी हो सकता है। आप पांच चपटी रीलों से आरम्भ कीजिये। इन पांचों में से कोई रील उठा लीजिये और उसे एक तरफ अलग करके रख दीजिये। अब कोई एक और रील उठाइये। इसकी पृथक की हुई रील से तुलना कीजिये। यदि हाथ में पकड़ी हुई रील पृथक रील से गहरी हो तो उसे बांई ओर रख लीजिये। यदि उससे हल्की हो तो उसे दांई ओर रख लीजिये। इस तरह यह साधन बाकी रीलों के साथ किये जावें।

यह साधन धीरे धीरे सातों दर्जे की गहरी हल्की नौ रंगों की रीलों के साथ किये जा सकते हैं।

इन साधनों को स्मरण शक्ति के साधन बनाया जा सकता है। रीलों को बिखरा दीजिये और फिर उन्हें हल्के गहरे दृष्टिकोण से जोड़ने के साधन कीजिये।

स्पर्श इन्द्रिय के साधन

स्पर्शेन्द्रिय के साधनों की सामग्री यह है:—(१) एक समकोण लकड़ी का बोर्ड होता है जो दो बराबर भागों में बंटा होता है। इसके एक भाग पर कोमल और दूसरे भाग पर खुरदरा कागज़ लगा होता है।

(२) दूसरा समकोण बोर्ड छः बराबर भागों में बँटा हुआ होता है। इन भागों में एक कोमल फिर एक खुरदरा इस प्रकार करके तीन कोमल और तीन खुरदरे कागज़ लगे होते हैं।

(३) तीसरा बोर्ड भी छः भागों में बँटा होता है और इसके छः भाग

इस प्रकार लगे होते हैं कि पहला सबसे खुरदरा दूसरा उससे कम खुरदरा, तीसरा उससे कम इसी के तारतम्य क्रम में सब लगे होते हैं।

(४) चौथा बोर्ड भी छः भागों में बँटा होता है। परन्तु इसमें खुरदरे के स्थान पर कोमल कपड़ा तार्तम्य क्रम में लगा होता है।

इस लगी हुई सामग्री के अतिरिक्त खुली सामग्री भी होती है। पहियों के ऊपर तार्तम्य क्रम में खुरदरा कागज़ लगा हुआ होता है। दूसरी खुली सामग्री मख़मल, सिल्क, सैटिन, ऊन, सूती, और लिनन इत्यादि कपड़ों की होती है। प्रत्येक कपड़े के एक समान दो दो टुकड़े होते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय के साथ साधनों के लिए उगंलियों के अग्रभाग को तैयार किया जाता है। ऐसी तैयारी से उगंलियों के अग्रभाग अनुभवशील हो जाते हैं। उनकी शक्ति बढ़ जाती है और वह ढीली पड़ जाती हैं। ध्यान एकाग्रचित हो जाता है।

इस तैयारी के साधन के लिए यह सामग्री है—दो जग होते हैं एक गर्म पानी और दूसरा ठंडे पानी के लिए, एक बड़ा कटोरा, रुई, तौलीया, ट्रे।

गर्म पानी के जग में से कटोरे में पानी डालिए। फिर ठंडे पानी के जग में से उसमें ठंडा पानी डालिए जब तक कि कटोरे का पानी शीत गर्म न हो जावे। दायें हाथ की उगंलियों के अग्रभाग को इस कटोरे में कुछ समय के लिए डालिये। अब निकाल कर इन्हें एक एक करके तौलिए से पोंछ लीजिये। उगंलियों के अग्रभाग को कपड़े पर रगड़िये ताकि यह और भी अनुभवशील हो जावें। अब तौलिए की तह कर लीजिये। कटोरे को साफ़ कर लीजिये और सामग्री को अपने स्थान पर रख लीजिये।

उगंलियों के अग्रभाग को अनुभव शील करने के पश्चात् अब आप पहला बोर्ड लाकर मेज़ पर रखिये। ध्यान रहे कि बोर्ड को दोनों हाथों से ऐसे उठाया जावे कि उसका ऊपरी भाग छुआ न जावे। आप बैठ जाइये और बालक को अपने बांई ओर बिठा लीजिये। अपने दायें हाथ की उगंलियों के अग्रभाग को पहले खुरदरे भाग और फिर कोमल भाग पर फेरिये। आप अपनी उगंलियों को ऐसे फेरिये कि आप की उगंलियों के अग्रभाग ही केवल बोर्ड के कागज़ों के ऊपरी भाग को छुएं। आप अपने व्यवहार से बालक को यह

अनुभव करावें कि आप खुरदरेपन और कोमलता का अधिक से अधिक अनुभव कर रहे हैं। ज्यों २ आप अपनी उगंलियों के अग्रभाग के कागज़ के साथ सम्पर्क को हल्का करेंगे त्यों त्यों अनुभव अधिक तीव्र होगा। ऐसे साधन से और रुचि बढ़ जाती है। यदि बालक आखें बन्द करके यह साधन करना चाहे तो उसे ऐसा करने दीजिये।

अब दूसरे बोर्ड के साथ साधन किया जावे। इन साधनों में स्पर्शेन्द्रिय, मांस पेशी इन्द्रियों की अगुआ बनती हैं।

तीसरे बोर्ड में मांस पेशी इन्द्रिय, स्पर्शेइन्द्रिय की अगुआ बनती है।

इन स्पर्शेन्द्रिय साधनों द्वारा लिखना सीखनें की तैयारी में सहायता होती है।

अब कपड़ों के टुकड़ों के साथ साधन किये जावें। दो विपरीत प्रकार के कपड़े ले लीजिये। एक बहुत खुरदरा और एक बहुत कोमल, जैसे सिल्क और ऊन। एक टुकड़े को अपने सामने मेज़ पर रख लीजिए इसे बायें हाथ से पकड़िये और दायें हाथ की उगंलियों के अग्रभाग से उसे वैसे ही छुयें जैसे बोर्ड के कागजों को छूते हैं। आप बहुत हल्के से छुइये ताकि आपको सम्पर्क का ठीक और तीव्र अनुभव हो। अब आप बालक से पूछिये कि क्या वह इस कपड़े को छूना चाहेगा। यदि वह एक कपड़ा छू ले तो उसे दूसरा दिया जावे।

इस के पश्चात् बालक को एक समान खुरदरे या कोमल टुकड़ों को पृथक पृथक जोड़ने का साधन दिया जावे। इन साधनों की वही विधि है जो और जोड़वें साधनों की है।

रंगों के नाम सीखने में जो त्रिपद साधन किये गये थे वह अब 'खुरदरे' और 'कोमल' शब्दों को खुरदरे और कोमल वस्तुओं के साथ सम्बन्धित करने में किए जावें।

रंगों के गहरेपन और हलकेपन की मात्रा में उन्हें जोड़ने की विधि अनुसार अब कपड़ों के टुकड़ों अथवा पट्टियों के खुरदरे व कोमलपन को तारतम्य क्रम में जोड़ना सिखाया जावे।

आकार भेद बोध के साधन

इन साधनों के लिये सामग्री यह है—

क—एक प्रदर्शनीय चौखट रेखा गणित दराजों वाली सन्दूकची के ऊपर

होती है इस में विपरीत आकारों की तीन आकृतियां, त्रिभुज, समचतुर्भुज और वृत्त होती हैं। यह आकृतियां लकड़ी के चौखट में खुदे हुये स्थानों में जमी हुई होती हैं। चौखट पर लकड़ी के प्राकृतिक रंग का वारनिश होता है। आकृतियों का रंग चमकीला नीला होता है। आकृतियों के नीचे के खुदे हुये स्थानों का रंग भी नीला होता है।

रेखागणित दराजों वाली सन्दूकची में छः दराज़ होते हैं प्रत्येक दराज़ में छः आकृतियां दो लाईनों में जमी होती हैं। खुदे हुये स्थानों का वही रंग होता है जो आकृतियों का होता है। हर एक आकृति के केन्द्र में मुठ लगी रहती है इससे उसे उठाया जा सकता है।

(१) पहले दराज में छः लकड़ी की त्रिभुज आकृतियां हैं यह एक दूसरे से कोनों और तरफ़ों में भिन्न भिन्न होती हैं। अर्थात् पहला त्रिभुज समभुज, दूसरा समद्विबाहु, आसन्न त्रिभुज, समकोण त्रिभुज, स्थूल कोण त्रिभुज, सूक्ष्म कोण त्रिभुज।

(२) दूसरे दराज में एक १० X १० से० मी० की समचतुर्भुज आकृति होती है। और पांच समकोण आकृतियां होती हैं। इन की लम्बाई समचतुर्भुज की एक तरफ़ के बराबर है लेकिन चौड़ाई एक से० मी० कम होती जाती है। आखरी चतुर्भुज की एक तरफ़ ५ से० मी० रह जाती है।

(३) तीसरी दराज़ में बहुभुज लकड़ी की आकृतियां हैं। पहली आकृति पंचभुज, दूसरी षट्भुज, तीसरी सात भुजों की, चौथी अष्ठ भुजों की, पांचवीं नौ भुजों की, छटी दस भुजों की होती है।

(४) चौथे दराज में छः वृत्त होते हैं। इनका व्यास १० से० मी० से लेकर एक एक से० मी० कम होता जाता है और आखरी का ५ से० मी० रह जाता है।

(५) पाँचवें दराज में निम्नलिखित आकृतियां हैं:—

पहला तुल्य चतुर्भुज, दूसरा विषम कोणायत, तीसरा विषम कोण चतुर्भुज, चौथा अतुल्य चतुर्भुज और दो सामान्तर चतुर्भुज।

(६) छटे और आखरी दराज में यह आकृतियां है—

अडांकार, दूसरा दीर्घ वृत्तकार, तीसरा वक्रबाहु, चौथा पुष्पाकृति और

आकार भेद विकास के साधनों की सामग्री
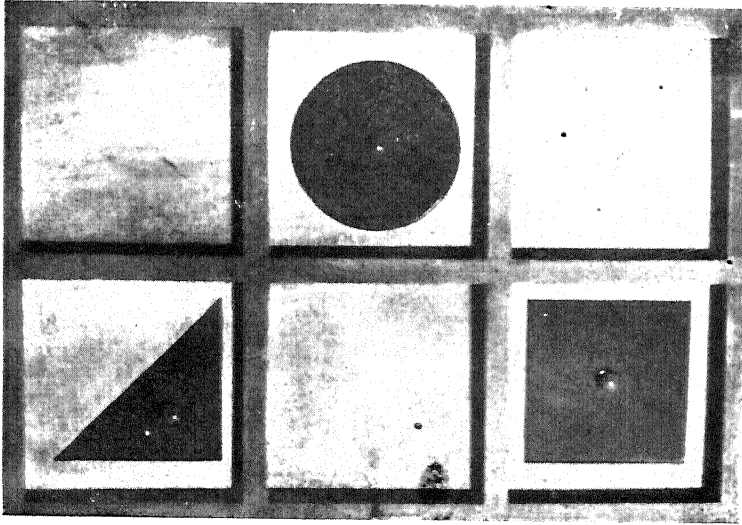
प्रदर्शनी चौखट (पृ० १२३)
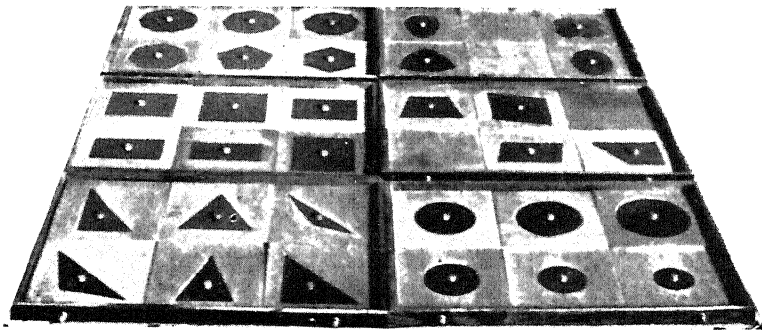
रेखा गणित वाली संदूकची के छः ड्राजों की आकृतियां (पृ० १२४)
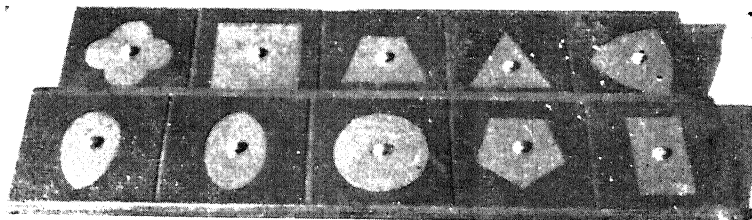
मैटल इनसैटस

दो अनिश्चित आकारों की आकृतियाँ होती हैं।

इस सन्दूकची की सामग्री के साथ सफ़ेद समभुज कार्डों के तीन सैट होते हैं और प्रत्येक कार्ड की लम्बाई चौड़ाई १४ × १४ से० मी० होती है। पहले कार्डों के सैट पर सब दराजों की ३२ ज्यामितिक आकृतियां के आकार नीले रंग में अंकित होते हैं। दूसरे कार्डों के सैट में इन ३२ आकृतियों की नीले रंग की एक से० मी० मोटी बाहरी रेखा बनाई होती है।

तीसरे सैट के कार्डों पर बारीक नीले रंग की बाहरी रेखा बनाई हुई होती है।

प्रदर्शनीय चौखट को मेज़ पर लाकर रख दीजिए। इस की तीनों आकृतियों अर्थात्, सम चतुर्भुज, वृत्त और त्रिभुज को उनकी मुट्ठ से पकड़ कर बाहर निकालिये। अब इन में से किसी एक को बायें हाथ में पकड़ लीजिये। इसे खूब देखिये। इसके आकृति के मांस पेशी अनुभव के लिये दायें हाथ की दो उगंलियों के अग्रभाग से इसकी सब तरफ़ों को हल्के २ छुइये। इस आकृति को उस बिन्दु से छूना आरम्भ कीजिये जो आप के बिल्कुल समीप हो। ऐसे छूने के पश्चात् इस आकृति के खुदे हुये स्थान को चौखट में ढूंढ़िये। यह जानने के लिये कि यह खुदा हुआ स्थान ठीक निश्चित किया गया है इस के ऊपर उगंलियों के अग्रभाग को फेरिये लेकिन आप अपने समीप वाले बिन्दु से आरम्भ न कीजिये, दूसरे अन्त वाले बिन्दु से फेरना आरम्भ कीजिये। दोनों के आकार सम्बन्धी अनुभव एक समान होंगे। ऐसे होने पर हो आपने आकृति का चौखट में खुदा हुआ स्थान ठीक निश्चित किया है। अब आकृति को उसके चौखट में खुदे स्थान में जमा दीजिये। यही साधन बाकी दो आकृतियों के साथ कीजिए। अब बालक को यह साधन करने दीजिये। जब बालक स्वयं करने लग जावे तो आप चले जाइये।

अब बालक को सन्दूकची के किसी भी दराज़ के उठाने की छूट है फिर वह यह छूने के साधन उसके साथ कर सकता है। यह साधन आंखें बन्द करके भी किया जावे।

यह साधन अधिक कठिन किया जावे। एक दराज़ की आकृतियों के स्थान पर अधिक दराजों की आकृतियां एक ही समय में ली जावें और उन्हें मिला जुला दिया जावे। इनके साथ साधन के लिये दो विधियां हो सकती हैं।

इन आकृतियों को पहले अलग अलग श्रेणियों में बांट लिया जावे। या कोई भी आकृति उठाई जावे और इसके बराबर का खुदा हुआ स्थान ढूढने और उसमें उसे जमाने का साधन किया जावे ।

स्मरण शक्ति के साधन के लिये आकृतियों को दूर रखा जावे और फिर एक एक करके उन्हें लाकर निश्चित खुदे हुये स्थानों में जमाया जावे। पुनः इन आकृतियों को जगह जगह पर बिखरा दिया जावे फिर उपरोक्त साधन किया जावे ।

दराजों को हटा दिया जावे और आकृतियों को उनके भेद अनुसार तार्तम्य क्रम में जोड़ने का साधन किया जावे। यह साधन केवल तीन दराज़ों की आकृतियों के साथ ही हो सकते हैं। अर्थात् चतुर्भुज, वृत्त और पंचभुज आकृतियों के साथ हो सकते हैं ।

यह सब साधन आखें बन्द करके कीजिये। यह तीन और साढ़े तीन वर्ष के बालकों के लिए उपयोगी हैं।

कार्ड और आकृतियों के साथ साधन

मौमितिक आकृतियों वाले कार्डों में से कोई एक छः कार्डों का सैट निकाल लीजिये। इनकी आकृतियों वाला दराज ले आइये। अब इन्हें दरी पर परिपाटी में फैला लीजिये। अब इनके अनुसार लकड़ी की आकृतियों को दराज से बाहर निकाल लीजिये। दराज को वापिस अपनी जगह पर रख दीजिये अब किसी भी आकृति को उसकी मुठ से पकड़िये। आकृति के आकार को देखिये। अब कार्डों पर अंकित मौमितिक आकृतियों को देखिये। तुलना द्वारा ऐसा कार्ड ढूढं पाइये जिसका आकार आकृति के समान हो। आकृति को इस कार्ड के मौमितिक आकार पर जमाइये। यह साधन बाकी सब आकृतियों के साथ किये जावें ।

इनमें सफलता पर दूसरे और तीसरे सैट के कार्डों के साथ भी यही साधन किए जावें।

बालक इन कार्डों के साथ तार्तम्य क्रिया का साधन भी कर सकता है। यह साधन इस प्रकार करता है। बालक कार्डों को लाकर अक्रम में दरी पर फैला
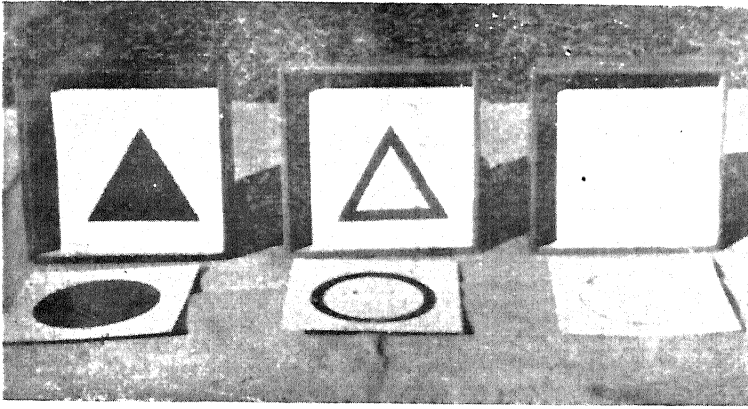
कार्डों के सैट का नमूना। (पृ० १२५)

आकार भेद विकास के साधन

बेसन्ट स्कूल अदयार, मद्रास
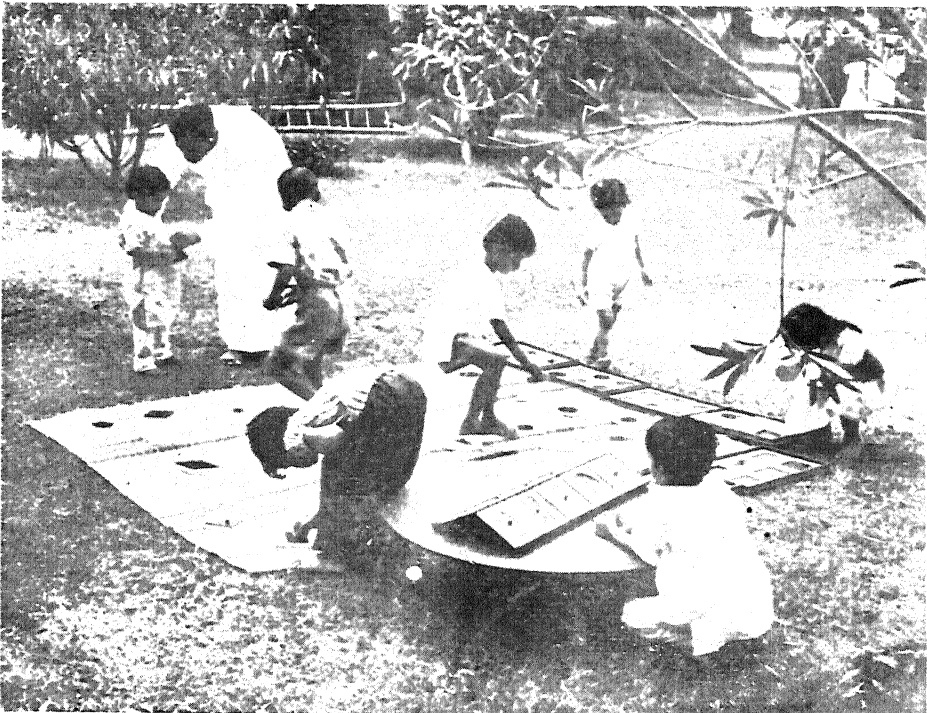
देता है। अब इन्हें देख देख कर तारतम्य क्रम में लगाता है।

अपनी त्रुटि देखने के लिये वह आकृतियों को लाकर इन कार्डों पर जमाता है। इस प्रकार उसे स्वयं ही अपनी त्रुटि का पता लग जाता है।

स्मरण शक्ति के साधन इस प्रकार हो सकते हैं। आकृतियों को दूर रख दीजिए या बिखरा दीजिये और फिर कार्डों पर अंकित आकृतियों के अनुसार लकड़ी की आकृति को ढूढं कर उस पर जमाइये। उपरोक्त साधन दो प्रकार के हो सकते हैं। पहले या तो लकड़ी की आकृतियों को अलग परिपाटी में जोड़ लिया जाये और फिर जमाया जाये या लकड़ी की आकृति जैसे हाथ में आवे वैसे ही हाथ में लिया जावे और कार्डों पर जमाया जाये।

इन साधनों द्वारा बालक अपनी दृश्येन्द्रिय को वस्तुओं के आकार में शिक्षित करता है। पुनः वह वस्तुओं के आकार को वस्तुओं से पृथक जान लेता है। इस प्रकार वह वस्तुओं के आकार को वस्तुओं से स्पष्ट कर लेता है। यह स्पष्टीकरण आगे चलकर बालक को वस्तुओं पर उसी प्रकार अधिकार दे देता है जैसे एक मुठ वस्तुओं के पकड़ने में वस्तुओं पर अधिकार दे देती है। यह साधन तीन और साढ़े तीन वर्ष के बालकों के लिये उपयोगी है।

कर्ण-इन्द्रिय के साधन

कर्ण-इन्द्रिय के साधन की सामग्री दो डिब्बों से समूहित है। प्रत्येक डिब्बे में दण्डगोल रुपी छः छः डिब्बियां हैं। एक डिब्बे की छः डिब्बियों में से छः प्रकार की ध्वनि आती है। पहली डिब्बी की ध्वनि तेज़ होती है जिस में पत्थर भरे होते हैं और सब से कम ध्वनि वाली डिब्बी में रेत भरा रहता है। यह डिब्बियां रुप में तो समान होती हैं परन्तु रंग में फर्क होता हैं। एक डिब्बे की डिब्बियों का रंग लाल होता है और दूसरे वाली का नीला।

यह साधन एक चुपचाप कोने में होने चाहिये। दरी बिछा लीजिये। दोनों डिब्बे ले आइये और उनमें से एक बहुत आवाज़ वाली और एक कम आवाज़ वाली डिब्बी निकालिये। अपने दायें हाथ में एक बहुत आवाज़ वाली डिब्बी को लीजिये और उसे दायें कान के पास ले जाकर बजाइये। फिर दूसरी डिब्बे की उसी आवाज़ वाली डिब्बी को बायें हाथ में पकड़िये और बांये कान के पास ले जा कर उसी ज़ोर से उसे बजाइये जिस ज़ोर से दायें हाथ वाली डिब्बी को बजाया

था। इस डिब्बी को पहली के साथ जोड़ी कर दीजिए। इसी प्रकार फिर कम अवाज़ वाली डिब्बियों की जोड़ी बना लीजिए।

इस सामग्री के साथ साधन वही हैं जो और सामग्री के साथ किये जाते हैं। और यह उन्हीं विधियों से किये जांय। अर्थात् (१) जुड़वें साधन किये जावें (२) नाम सीखने के त्रिपद साधन किये जावें (३) स्मरण शक्ति के प्रयोग द्वारा जुड़वें साधन किये जावें अर्थात् डिब्बियों को दूसरी जगह पर रख दिया जावे या बिखरा दिया जावे और फिर उन्हें जोड़ा जावे। (४) ध्वनियों को क्रमानुसार जोड़ने के साधन किये जावें।

भार निर्णय के साधन

यह सामग्री तीन डिब्बों में होती है। प्रत्येक डिब्बे में छः छः पट्टियां होती हैं। यह पट्टियां ६ × ८ से० मी० चौड़ाई लम्बाई की और ५ से० मी० मोटी होती हैं। यह पट्टियां बहुत कोमल होती हैं और इन पर चमकदार पालिश हुआ होता है। प्रत्येक डिब्बे की पट्टियां अलग अलग प्रकार की लकड़ी की बनी होती हैं और इस लिये भार में भी भिन्न भिन्न होती हैं। प्रत्येक डिब्बे की पट्टियां दूसरे डिब्बे की पट्टियों से ६ ग्राम भार द्वारा भिन्न होती हैं। पहले डिब्बे की प्रत्येक पट्टी का भार २४ ग्राम है। इन का रंग भूरा सा होता है। दूसरे डिब्बे की प्रत्येक पट्टी को भार १८ ग्राम होता है। इन का रंग हल्का भूरा होता है तीसरे डिब्बे की प्रत्येक पट्टी का भार १२ ग्राम होता है इसका रंग सबसे हल्का होता है और लकड़ी के प्राकृतिक रंग का होता है।

दो पट्टियां लीजिये, एक सब से भारी और दूसरी सब से हल्की अर्थात् एक पहले डिब्बे में से और दूसरी तीसरे डिब्बे में से। एक पट्टी को बालक के खुले हाथ की उगंलियों के अग्रभाग पर रखिये। और ध्यान रहे कि उसकी बांह को किसी वस्तु का सहारा न हो। इस अनुभव के बाद दूसरी पट्टी को दूसरे हाथ की उगंलियों के अग्रभाग पर रखिये और बालक से कहिये कि दोनों के भार के भेद का अनुभव करे।

इसके बाद दूसरे डिब्बे की पट्टियां भी दीजिये और उनके साथ भी भार अन्तर का साधन करवाइये।

भार इन्द्रिय विकास की सामग्री
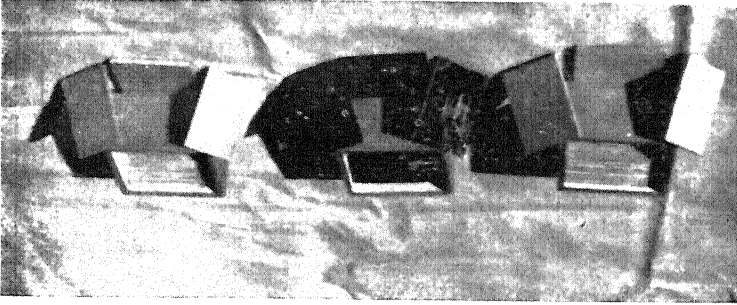
छः छः पट्टियों के तीन डिब्बे (पृ० १२८)

कर्ण इन्द्रिय विकास की सामग्री
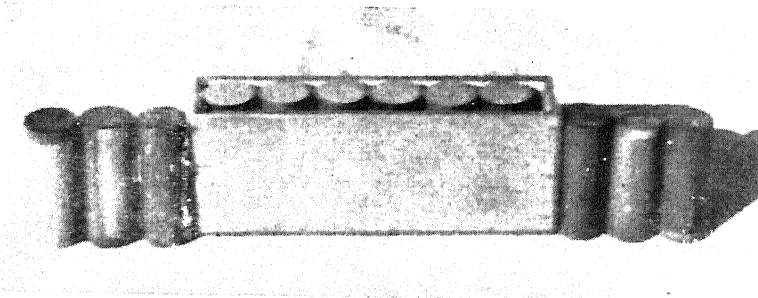
ध्वनियों की दण्डगोल रूपी डिब्बियां (पृ० १२७)

दूसरा साधन जोड़ी बनाने का साधन है । यह साधन आरम्भ से पहली और तीसरी पेटी के साथ किया जावे फिर दूसरी पेटी भी ली जाय । यह साधन पहले आंखें खुली होने पर और फिर आंखें बन्द करके किया जावे ।

हल्के और भारी शब्द त्रिपद विधि द्वारा सिखाये जावें । यह सब साधन तीन और साढ़े-तीन साल के बच्चों के लिये उपयोगी हैं।

स्नायु, पेशियों, जोड़ों तथा स्पर्शेन्द्रिय सहयोग द्वारा ठोस विस्तार का ज्ञान ।

इन साधनों के लिये यह सामग्री है ।—(क) एक थैली में धरातल रेखा-गणित आकृतियों अर्थात् त्रिकोण, चतुर्भुज, सम-चतुर्भुज, पुष्पाकृत वृत इत्यादि की जोड़ियां रहती हैं ।

(ख) पांच छः सूती थैलियां होती हैं । प्रत्येक थैली में दो भिन्न २ प्रकार की फलियों के दाने या भिन्न दालों के दाने या मोती होते हैं । उदाहरणार्थ एक थैली में अरहर और मूंग, दूसरी में उड़द और काली मिर्च, तीसरी में गेहूँ और चावल, चौथी में अरहर और मलका मसूर, पांचवीं में दो शक्लों के मोती जिसमें एक नाशपाती जैसी शक्ल के और दूसरे गोल शक्ल के होते हैं । छटी थैली में भी मोती हैं । यह मोती आकृति में एक समान परन्तु एक बड़े और दूसरे छोटे होते हैं ।

(ग) एक थैली में ठोस धरातल रेखागणित आकृतियां होती हैं । उनकी सूची यह है । एक घन, एक गोला, दोनों ५, ५ से० मी० के हैं । एक दण्ड गोल जो ५ से० मी० व्यास और १० से० मी० ऊंचाई का है । एक चार तरफ़ा सुंडाकार खम्भा जिसका तला घन के बराबर है । तीन तरफ़ा सुंडाकार खम्भा जिस का तला समबाहु त्रिभुज का हो । एक गोल सुंडाकार खम्भा जिसका तला ५ से० मी० व्यास के वृत का हो । एक तीन तरफ़ा छेदित-घन क्षेत्र, एक चार तरफ़ा छेदित-घन क्षेत्र, एक ठोस अडांकार एक लम्ब अडांकार ।

(घ) इन सब ठोस आकृतियों के आकार गत्ते पर कटे हुये होते हैं ।

पहले साधन के लिए ऐसी थैली के दाने जो आपस में बहुत पृथक हों उन्हें प्लेट में निकाल लिया जाये । अब आंखें बन्द करके दायें हाथ के साथ इनकी भिन्नता को अनुभव किया जाये और इन दोनों को अलग २

रख दिया जाये। भिन्न भिन्न दानों या मोतियों को थैलियों में से निकाल कर अलग अलग प्लेट में रखा जाये। इन की भिन्नता अनुभव की जाये। इसके पश्चात् यह साधन बालक के चाहने पर उसे दे दिये जायें। बालक को साधन देते समय पहले ऐसी थैलियों के दाने या मोती लें जिनका अन्तर बहुत हो और फिर तार्तम्य क्रम में भिन्नता के आधार पर बाकी थैलियां एक २ करके दी जायें।

धरातल रेखागणित ठोस आकृतियों के साथ पहला साधन इनके नाम सीखने का है। यह साधन त्रिपद विधि द्वारा किए जाएं।

जब नाम सीख लिये जावें तो इन ठोस आकृतियों को आखें बन्द करके हाथों की गति द्वारा इन्हें पहचानने का साधन किया जाये।

तीसरा साधन इन ठोस आकृतियों के जो समान गुण हैं उनको ढूढंना और अनुभव करना है इसके लिये गत्ते पर कटी हुई पांच आकृतियां लीजिये। पहले गत्ते की एक आकृति लीजिये। ऐसी ठोस आकृतियां ढूंढिये जो उस गत्ते की आकृति के साथ एक या दूसरी प्रकार से मिलती हैं। यह साधन बाकी चार गत्ते के टुकड़ों के साथ किये जावें। चौथे साधन में बालक को ठोस आकृतियों की गति के नाम सिखाये जाते हैं। जैसे गोला 'लुढ़कता' है और गोल सुडांकार खम्भा 'चक्कर' काटता है और घन 'पलटा' जाता है इत्यादि।

रसेन्द्रिय के साधन

सामग्री—चार सफ़ेद शीशियां एक ट्रे में होती हैं। एक में घुली हुई गाढ़ी गाढ़ी चीनी होती है, दूसरी में खाने वाला नमक घुला हुआ, तीसरी में शुद्ध सिरका और चौथी में कड़वा पानी होता है। इन चार शीशियों के अतिरिक्त ट्रे में एक कटोरा, एक पानी का जग, दो छोटे गिलास और एक ड्रौपर होता है।

साधन—पहले पहल इन स्वादों के नाम सिखाऐ जाते हैं। बालक से कहिये कि जीभ को मुहँ में दोहरा करके फिर बाहर निकाले। अब ड्रौपर से बोतल में से घुलाव का एक बूदं बालक की जीभ पर डालिये। अब उसे जीभ अन्दर करने को कहिये और तालु से लगाने को कहिये अब उसे नाम बताइये।

कुछ समय पश्चात् भिन्न भिन्न स्वादों के घुलाव जीभ के ऐसे भाग पर ही ड्रौपर द्वारा डाले जायें जो उस स्वाद की उत्तेजना के प्रति अनुभवशील हों।

प्रत्येक साधन के पश्चात् ड्रौपर और मुहं दोनों को साफ़ कर लेना चाहिये। यह साधन लगभग पांच वर्ष के बालकों के लिये उपयोगी हैं और अध्यापक की उपस्थिति में और सहयोग से किये जा सकते हैं।

घ्राणेन्द्रिय के साधन

घ्राणेन्द्रिय के साधनों के लिये यह सामग्री है—

क. एक समान शीशियों पर अलग अलग रंग के लेबल लगे हुये होते हैं, और इनमें तैयार की हुई सामग्री होती है, जिन की गन्ध फलों की, फूलों की, राल की, जलती वस्तु की (जैसे तारकोल की) और सड़ी गली वस्तु की होती है।

ख. दूसरी सामग्री भोजन सम्बन्धी गन्धों की होती है अर्थात् मिर्च, चाय और कौफी इत्यादि। यह सामग्री लकड़ी के डिब्बों में पड़ी होती है और डिब्बे जाली से ढके होते हैं।

ग. तीसरी सामग्री जड़ी बूटियों की गन्ध से सम्बन्धित है जैसे धनियां पोदीना, आदि। यह या तो ताज़ी ली जा सकती हैं और कपड़े की थैलियां में रखी जायें या इन का सूखा पाउडर छोटे २ डिब्बों में रक्खा जाये।

साधन—पहले दो बोतलें लीजिये जिनकी अलग अलग सामग्री हो। पहले बालक को बताइये कि कैसे सूंघते हैं। आप बोतल को कुछ फ़ासले पर रखिए और हल्के से सूंघिए। दूसरी बोतल की गन्ध लेने से पहले कुछ समय का अन्तर दे दीजिए। दोनों गन्धों के भेद को पहचानिए और भिन्नता दिखाइये।

अब बालक को साधन करवाने हैं—उसे गन्धों के नाम त्रिपद साधनों द्वारा कराए जाएं।

उसे जोड़ी साधन दिए जा सकते हैं। उससे आंखें बन्द करवा के यह साधन करवाये जा सकते हैं। जब बालक की आंखें बन्द हों तो आप उसके पास शीशी ले जाइये और उससे गन्ध का नाम पूछिये। यह साधन अन्य दो सामग्रियां (ख और ग) के साथ भी किये जावें।

तापेन्द्रिय के साधन

तापेन्द्रिय की सामग्री यह है:—पांच शीशियों का एक सैट होता है जिन का रंग नीला होता है। एक और इसी समान पांच शीशियों का दूसरा सैट होता है परन्तु इन शीशियों के तले का रंग अलग है। (यह शीशियां निम्न प्रकार से भरी हुई होती हैं।)

(१) एक जोड़ी शीत, (२) एक जोड़ी उष्ण, (३) एक जोड़ी $\frac{1}{2}$शी.+$\frac{1}{2}$उ० (४) एक जोड़ी $\frac{1}{3}$शी+$\frac{2}{3}$उ०, (५) एक जोड़ी $\frac{2}{3}$शी.+$\frac{1}{3}$उ०। प्रदर्शनीय साधन के लिए आप पहली सम्भावना की दो अति विपरीत ताप की शीशियों की जोड़ियां लीजिए। एक एक करके यह शीशियां ऊपर से दांए हाथ से पकड़ कर ले आइये। अब पहले शीत शीशी उठाइए अपने दांए हाथ की तली को थोड़ी गोलाई में शीशी के साथ लगाइए ताकि ताप का अनुभव हो सके। अब उष्ण शीशी लेकर इसी प्रकार अनुभव कीजिये। अब इन दो शीशियों की कोई सी जोड़ी उठाइए और उसके साथ जोड़ी क्रिया कीजिये। यह साधन पहली की न्याई दूसरी, तीसरी जोड़ी शीशियों के साथ किए जा सकते हैं। दूसरी और तीसरी जोड़ी शीशियों के साथ तार्तम्य के साधन भी किए जा सकते हैं।

यह साधन $3\frac{1}{2}$ वर्ष के बालकों के लिए उपयोगी हैं।

तापेन्द्रिय के साधन के लिए भिन्न भिन्न चीज़ों की पट्टियां जो $5\frac{1}{2}'' \times 4'' \times \frac{1}{4}''$ की होती हैं। इन में दो पट्टियां शीशे की, दो संगमरमर की, दो लोहे की, दो अखरोट जैसे काठ की, दो देवदार जैसे काठ की, दो नम्दे की, दो खपरैल जैसी होती हैं। एक बड़ा मोटा गत्ता मेज़ को ढकने के लिए होता है।

मेज़ को गत्ते से ढक दीजिए। पहले बालक को शीशे की पट्टी दीजिए और उसे गत्ते पर रखने को कहिए। उसे फिर इसका ताप अनुभव करना बताइये। फिर उसे नमदे की पट्टी का ताप अनुभव करने को दीजिये, अब उसे और शीशे या नम्दे की पट्टी दीजिए और उसे जोड़ी क्रिया करने को कहिए। ध्यान रहे कि जोड़ी क्रिया पट्टियों को खिसका कर करनी है उठा कर नहीं। अब बाकी पट्टियों के साथ भी आखें बन्द करके यही साधन किया जावे। इसी प्रकार उससे तार्तम्य रूप में क्रिया कराई जावे।

सारांश

(१) इन्द्रिय शिक्षा का उद्देश्य बालक के इन्द्रिय अनुभव में स्पष्टता, परिपाटी और श्रेणी संग्रह लाना है। इसका गौण उद्देश्य (१) वास्तविकता के साथ सम्बन्ध जोड़ना, (२) इन्द्रिय अनुभव को तीव्र करके अनुभव के क्षेत्र को बढ़ाना, (३) वैज्ञानिक दृष्टि कोण से चीज़ों को देखना और उनकी परीक्षा करना, (४) शारीरिक गतियों में सुधार करना, (५) मुख्य अकस्मात् में भेद करना, (६) एकाग्रचित्तता के विकास में तथा नीति और सुन्दरता भावों के बढ़ाने और इन्द्रियों के दोष जानने में सहायता देना है।

(२) मॉण्टेसोरी इन्द्रिय सामग्री के यह लक्षण हैं—प्रत्येक मॉण्टेसोरी सामग्री विशेष भौतिक गुण को प्रस्तुत करती है। वह ऐसी हल्की फुल्की होती है जो बच्चा आसानी से उठा सके। उनमें एकाग्रचित हो सके। यह बालक की शुद्धियों को स्वयं अनुभव कराती है। यह सामग्री सीमित एवं आकर्षणीय होती है। यह सामग्री खुली अलमारी में रहती है।

(३) सामग्री के प्रयोग में यह बातें आवश्यक हैं—(१) सामग्री का बुद्धिमत्ता से प्रयोग किया जावे (२) इस का प्रयोग बालक को करके दिखाया जाए। (३) बालक को सामग्री प्रयोग के लिए उद्यत न किया जाए। (४) बालक के स्वयं प्रेरित अथवा उत्साहित होने पर ही सामग्री प्रयोग के लिए देनी चाहिए। (५) प्रदर्शन में अध्यापक को कम से कम शब्द प्रयोग में लाने चाहिएं परन्तु जो शब्द प्रयोग में लाने आवश्यक हों इन का उच्चारण स्पष्ट और मधुर हो। (६) किसी भी सामग्री के साधन की प्रदशर्नी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप में दी जावे। (७) यदि बालक सामग्री का दुरुपयोग करे तो एक दम रोक देना चाहिए। (८) बालक की सामग्री प्रयोग में अशुद्धियों की निन्दा न करनी चाहिए और न ही अशुद्धियों को ठीक करना चाहिए।

(४) मॉण्टेसोरी विधि में इन्द्रिय की सामग्री और साधन यह हैं—

क—दृश्येन्द्रिय—(१) पहली सामग्री चार गट्टा पेटियों की है। इस सामग्री के साथ जोड़ी क्रिया, तार्तम्य क्रिया और स्मृति पुष्टि के साधन किए जाते हैं।

(२) गुलाबी मीनार—पहला प्रदर्शन और साधन इसे मीनार के रूप में

जोड़ने का है। फिर बालक की आखें बन्द कर के एक घन निकाल कर उसे पूछा जाता है कि इस घन को कहां रखना है। इसी प्रकार एक घन छिपा कर उससे पूछा जाता है कि किस स्थान से घन गुम है। पुनः घनों को बिखरा कर उन्हें जोड़ने के लिए कहा जाता है।

(३) चौड़ी सीढ़ी—पहला प्रदर्शन और साधन इसे जोड़ने का है। मीनार वाले साधन इस सामग्री के साथ किए जाते हैं।

(४) लम्बी सीढ़ी—पहले प्रदर्शन और साधन में इसे सीढ़ी के रुप में जोड़ना है। इसके साथ मीनार सामग्री वाले चारों साधन किए जाते हैं। एक और साधन यह है कि सब से बड़ी पट्टी लेकर उसके नीचे उससे अगली लम्बी पट्टी जोड़ी जावे और सबसे छोटी पट्टी उसके साथ मिला कर बराबर कर दिया जावे। और यही साधन बाकी पट्टियों के साथ किये जावें। इसी प्रकार किसी भी पट्टी से शुरु करके यह साधन किए जा सकते हैं।

(५) रंगों की चपटी रीलें—इस सामग्री के साथ जोड़ी क्रिया, तातन्य क्रिया, स्मृति साधन तथा नाम सीखने के त्रिपद साधन किए जाते हैं।

ख—स्पर्शेन्द्रिय—इसके लिए दो प्रकार की सामग्री होती है। एक प्रकार की सामग्री चार बोर्डों में लगी हुई होती है और दूसरे प्रकार की सामग्री कपड़े के टुकड़ों और धागे की नलकियों से समूहित है। पहला प्रदर्शन और साधन धुली हुई उगंलियों को बोर्डों के खुरदरे और कोमल भागों पर फेरना है। शेष साधन जोड़ी क्रिया, तारतम्य की क्रिया तथा नाम जानने के हैं। कुछ साधन आखें बन्द करके भी किए जाते हैं।

ग—कर्णेन्द्रिय—इसकी सामग्री दो डिब्बों में होती है। प्रत्येक डिब्बे में ६, ६ डिब्बियां हैं जिनकी ६, प्रकार की ध्वनियां हैं। इन के साथ जोड़ी क्रिया, तारतम्य क्रिया, स्मृति और नाम सीखने के साधन किए जाते हैं।

घ—भारेन्द्रिय—इस की सामग्री तीन डिब्बों में होती है और प्रत्येक डिब्बे में ६, ६, पट्टियां ६×८ से० मी० की होती हैं और प्रत्येक डिब्बे की पट्टियों में एक दूसरे से ६ ग्राम का अन्तर होता है। इस के साथ साधन आखें बन्द करके किया जाता है। जोड़ी तथा नाम सीखने के साधन किए जाते हैं।

च—स्नायु, पेशियों, जोड़ तथा स्पर्शेन्द्रियां—इसकी सामग्री आठ थैलियों में होती हैं। एक थैली में धरातल रेखागणित की आकृतियां होती हैं। और ६ थैलियों में फलियों के बीज व दालें होती हैं। आठवीं थैली में धरातल रेखागणित की ठोस आकृतियां होती हैं। पहली थैली की आकृतियों पर आंखें बन्द करके हाथ फेरा जाता है और जोड़ी क्रिया की जाती है। दालों और फलियों के बीजों के साथ भी जोड़ी क्रिया की जाती है। आठवीं थैली की धरातल रेखागणित ठोस आकृतियों के साथ पहले नाम सीखने का साधन किया जाता है। फिर इन के साथ जोड़ी क्रिया की जाती है, इन के अतिरिक्त ठोस आकृतियों और धरातल रेखागणित आकृतियों के समान गुणों को पहचानने तथा ठोस आकृतियों की गति के नाम सीखने के साधन किए जाते हैं

छ—तापेन्द्रिय—इस की सामग्री पांच जोड़ी बोतलों की होती है जिन में भिन्न भिन्न ताप का पानी डाला होता है। दूसरी सामग्री भिन्न भिन्न वस्तुओं की पट्टियां होती हैं। इस सामग्री के साथ जोड़ी तथा तारतम्य क्रिया और स्मृति के साधन किए जातते हैं।

ज—घ्राणेन्द्रिय—एक समान शीशियों में भिन्न भिन्न गन्धों की सामग्री होती है। दूसरी सामग्री खाद्य भोजन, तीसरी जड़ी बूटी सम्बन्धी होती है। इस सामग्री के साथ जोड़ी क्रिया की जाती है।

झ—रसेन्द्रिय—इस की सामग्री चार शीशियों में चीनी, नमक, सिरके और कड़वे पानी का घुलाव होता है। इस के साथ नाम सीखने के साधन किए जाते हैं।

ट—इन्द्रि द्वारा धरातल रेखागणित आकृतियों का ज्ञान—इस की सामग्री एक चौखट, तीन आकृतियां तथा छः दराजों वाली सन्दूकची जिस में भिन्न भिन्न आकृतियां होती हैं, है। इस सामग्री के साथ जोड़ी, तारतम्य क्रिया, स्मृति तथा नाम के साधन किए जाते हैं।

(५) यह सब साधन ढाई से चार वर्ष के बालकों के लिए उपयोगी हैं।

२०

भाषा शिक्षा

हम सब भाषा का महत्व समझते हैं। इस के द्वारा ही मनुष्य की बौद्धिक और मानसिक शक्तियों ने विकास और प्रफुल्लता पाई है। इसी के कारण सिद्धान्त विज्ञान और साहित्य सम्भव हुआ है। और इस के आधार पर ही हम प्रगति कर रहे हैं। पुनः इस के द्वारा ही भूत काल, वर्तमान और भविष्य एक लड़ी में बान्धे जाते हैं, भूतकाल की रचनाएं आज के रचना सग्रामों का आधार बनती हैं। सारांश यह कि भाषा मनुष्य को मानव रूप देने का महा साधन हैं।

भाषा द्वारा ही बालक अपने भावों को दूसरों तक पहुँचा कर और दूसरों के भाव स्वयं अनुभव कर सकता है। और इस प्रकार अपने भावों का सन्तुष्टतया विकास कर सकता है। पुन: वह मनुष्य जाति की रचनाओं का वारिस बन सकता है। इस महादेन द्वारा वह इस में अपनी देन भी दे सकता है।

भाषा दो प्रकार की होती है, एक बोलने की और दूसरी लिखने की। लिखित भाषा, बोलने की भाषा का मूर्त-स्वरूप है।। यह बालक ने साधनों द्वारा अनुभव करना है।

लिखित भाषा भी दो प्रकार की होती है एक चित्र लिपि। मनुष्य चित्रों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करता था। परन्तु यह चित्र लिपि एक सीमित साधन ही रह सकती थी। ऐसी लिपि द्वारा हम विचारों की दुनियाँ में बहुत ऊंची प्रावाज़ नहीं कर सकते। हम गुणवाचक सूक्ष्म विचारों को चित्र लिपि के द्वारा सुविधा से व्यक्त नहीं कर सकते। इस सीमा के कारण मनुष्य समाज ने चित्र लिपि के स्थान पर चिन्ह भाषा का विकास किया। ध्वनियों का विश्लेषण करके उनकी मुख्य ध्वनियों के लिए चिन्ह नियुक्त किए। यह वर्ण-माला सब ध्वनियों के चिन्ह रखती हैं और इनके जोड़ से सब ध्वनियों के मूर्त-रुप बनाए जा सकते हैं। इस वर्णमाला में हमारे सब प्रकार के विचारों को मूर्तरुप देने की असीमित योग्यता है।

भाषा और गणित
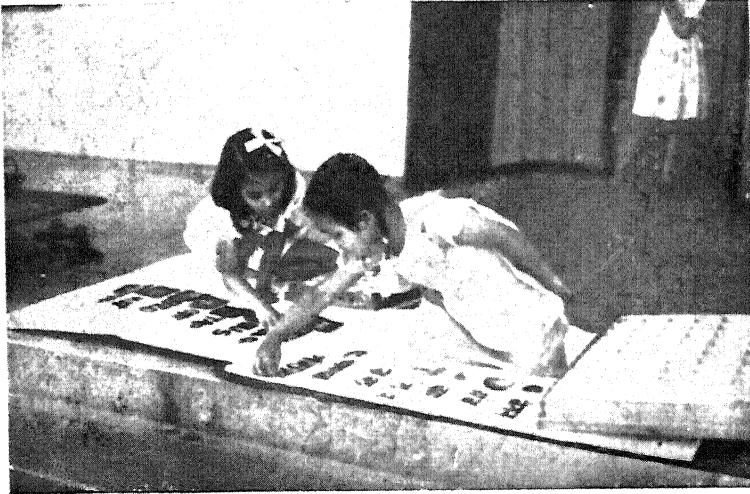
भाषा शिक्षा के साधन

गणित शिक्षा के साधन

मॉण्टेसोरी विधि प्रचलित वर्णबोध के स्थान पर नया अक्षर वर्ग या समूह बना कर बालक को अक्षर बोध कराती है। यह अक्षर वर्ग इस प्रकार हैं:—

पहला समूह:—१. अ आ इ ई उ ऊ

२. ए ऐ ओ औ

३. शुद्ध व्यञ्जन ध्वनियां—म न स ङ ल र य व ह

४. धड़ाके से उच्चारण होने वाले अक्षर—प क त

५. स्वर तन्तु के काम्पने से बोले जाने वाले अक्षर—ब ग, द।

यह हिन्दी भाषा के २५ मुख्य ध्वनियों के अक्षर हैं। और पहले पहल साधन इनके साथ परिचय से सम्बन्ध रखते हैं।

दूसरा समूह:—यह समूह जोड़ी ध्वनियों का है। इसमें ट ड ण अक्षर होते हैं। इन का साधन तथा ध्वनियों का अन्तर चित्रों द्वारा किया जाता है।

तीसरा समूह:—ऐसे अक्षरों का है जो एक से अधिक ध्वनि के चिन्ह हैं। च, श, ज, ष, ज्ञ, क्ष, त्र

चौथा समूह:—यह बल से उच्चारण करने वाले अक्षर हैं। जैसे ख घ छ झ फ भ ठ ढ थ ध

यह सब अक्षर रेगमार कागज़ पर कटे हुए होते हैं। स्वर वाले रेगमार अक्षर नीले कार्ड पर चिपकाए होते हैं। और व्यञ्जन गुलाबी कार्ड पर चिपकाए होते हैं। सर्व प्रथम पहले समूह के २५ अक्षरों के साथ पर्याप्त परिचय कराया जाता हैं। फिर उसे ध्वनियों के विश्लेषण के साधन पर डाला जाता है। यह साधन बच्चों को इकट्ठा करके कराया जाता है। अध्यापक शब्द-उच्चारण करता है और बालक उस शब्द के पहले और अन्तिम अक्षर की ध्वनि को पहचानता है। जब ध्वनि विश्लेषण में बालक की रुचि हो जावे तो उसे और सामग्री दी जाती है।

पहले २५ अक्षरों के साथ बालक को किस प्रकार परिचित किया जाता है? पहले अध्यापक बालक को उंगलियां धोने का आदेश देता है। ताकि उंगलियों का अग्रभाग भावशील हो जावे। अब बालक को पहले समूह के किन्हीं

दो अक्षरों को उसी तरह लाने के लिए कहा जाए जैसे किसी फ़ोटो को उठा कर लाया जाता है। जब बालक अक्षर का कार्ड ले आवे तो उसे मेज़ पर इस प्रकार रखने को कहा जाए कि उस की खाली जगह अध्यापक की बाईं ओर आवे। फिर उस कार्ड को बालक बाएं हाथ से उस खाली जगह से पकड़ कर अपने दाएं हाथ की पहली दो उंगलियां धीरे-धीरे अक्षर पर फेरे। उंगलियां फेरते समय ऊपर की लाइन को छोड़ दे और नीचे की ओर शुरु करे। जब आखिर में ऊपर की लाइन पर फेरे तो अध्यापक अक्षर का नाम उच्चारण करे। बालक जब जब उंगलियां फेरे उसे अक्षर उच्चारण करने को कहा जाए और जब वह ठीक प्रकार उंगलियाँ फेर ले तो अध्यापक चला जाए। बालक इसी प्रकार धीरे धीरे अक्षर को पहचानने लगता है और ठीक उच्चारण करने लगता है।

जब बालक ठीक उच्चारण कर ले तो उसे शब्द की ध्वनियों में उस सीखी हुई ध्वनि को पहचानने के लिए कहा जाता है। उदाहरणार्थ यदि बालक को 'आ' की ध्वनि की पहचान करवानी हो तो उसे 'आम' 'आलू' जैसे शब्द दिए जा सकते हैं।

वर्णों की सामग्री

यह सामग्री पांच डिब्बों में होती है। पहले डिब्बे में १० स्वर होते हैं। इन का रंग नीला होता है। इन के १० सैट होते हैं और प्रत्येक स्वर के दस २ अक्षर होते हैं। दूसरे डिब्बे के १५ मूल व्यञ्जन होते हैं जिन का रंग लाल होता है। प्रत्येक व्यञ्जन के पांच २ अक्षर होते हैं। तीसरे डिब्बे में जोड़ी ध्वनि वाले अक्षर होते हैं। चौथे डिब्बे में वह अक्षर होते हैं जो एक से अधिक ध्वनि देते हैं। पांचवें में बल से उच्चारण करने वाले अक्षर हैं। यह सब अक्षर लकड़ी के बने हुए होते हैं।

प्रत्येक डिब्बे के खाने के नीचे अक्षर की आकृति छपी हुई होती है।

साधन—इस सामग्री द्वारा अक्षरों पर हाथ फेरने और ध्वनि विश्लेषण का साधन एक साथ किया जाता है। यह दोनों क्रियाएं एक दूसरे की सहायक और उत्साहक बनती हैं। कोई भी ऐसा शब्द लीजिए जिससे बालक पहले ही परिचित हो—उसका तीन चार बार उच्चारण कीजिए और बालक से पूछ कर निश्चय कर लीजिए कि उसने आप का शब्द पूरी तरह सुना है। फिर इसी ध्वनि से मिलता हुआ स्वर लें और उसे उच्चारण करें। बालक को उस की

अगली ध्वनि सुनने को कहें और इसी प्रकार तब तक करते जाएं जब तक शब्द पूरा हो। जब तक बालक रुचि लेता रहे इसी विधि से और २ शब्द लेकर साधन को दोहराइये।

स्मरण रहे कि यह साधन जोड़ सीखने का नहीं है परन्तु यह साधन बालक को अपनी बोलने की भाषा की ध्वनि की जागृति देने के लिए है।

इन रेगमार अक्षरों द्वारा जोड़ी ध्वनियों के अक्षरों का भी बोध कराया जाता है। उदाहरणार्थ 'ट' और 'ड' के रेगमार अक्षर लीजिए। इन अक्षरों और ध्वनि का सम्बन्ध पहले त्रिपद साधन द्वारा किया जाता है। बालक को ऐसे दो चित्र दीजिए जिनके नाम इन की ध्वनि वाले हों। इन चित्रों के नाम स्पष्ट रूप से उच्चारण कीजिए और बालक को भी इसे उच्चारण करने को कहिए।

अब चित्रों को मिला दीजिए और बालक को चित्र अलग अलग करने को कहिए और इन के नीचे उन चित्रों के नाम अनुसार अक्षर रखने को कहिए। बालक अक्षरों से चित्र का पूरा नाम भी बना सकता है। इसी प्रकार और जोड़ी ध्वनि वाले अक्षरों के साथ यह साधन किया जाता है।

मात्राओं का डिब्बा

अक्षरों का एक और डिब्बा होता है जिसके द्वारा मात्राओं की ध्वनि का अनुभव कराया जाता है। इस डिब्बे की पहली लाइन में १० स्वर होते हैं। दूसरी लाइनमें इन्हीं स्वरों की मात्राएं होती हैं। तीसरी चौथी और पांचवी लाइन में, ३, ४, ५वीं पंक्ति तथा दूसरे, तीसरे और चौथे समूह के अक्षर होते हैं। इस डिब्बे के कुछ खाने खाली छोड़े जाते हैं। एक खाली खाने में 'हलन्त' हैं और दूसरे में 'अनुस्वार' होते हैं। इसके पश्चात् चार्टों द्वारा भी इन मात्राओं के ठीक स्थान दिखाए जाते हैं।

ड्राईंग इनसैटस

ड्राईंग इनसैटस दो लकड़ी के ऐसे बोर्ड होते हैं जिन में पांच धरातल रेखा गणित आकृतियां और उनके फ्रेम, १४×१४ से० मी० के आ सकें। फ्रेम और आकृतियां लोहे की बनी हुई होती हैं। फ्रेम गुलाबी रंग का होता है और आकृतियां नीले रंग की होती हैं। इस सामग्री के अतिरिक्त फ्रेम

के नाप के भिन्न भिन्न रंग के कागज़ होते हैं। एक आकर्षक पैड होता है और पांच या छः हल्के से गाढ़े रंग की नौ रंगों में पैन्सिलें होती हैं। यह पैन्सिलें एक मोटे कागज़ के डिब्बे में रक्खी रहती हैं।

इस साधन के लिए एक पैड, एक रंगीन कागज़, एक फ्रेम और उसकी आकृति, तीन प्रकार के रंगों की पैन्सिलों की सामग्री आवश्यक है।

बालक को उस स्थान पर ले जाइए जहां यह चीज़ें रक्खी हुई हैं। पहले उसे पैड दीजिए, बालक को अपनी पसन्द का कागज़ चुन लेने दीजिए। अब कागज़ को पैड पर रख लीजिए। इस कागज़ के ऊपर फ्रेम रखिए और फ्रेम में आकृति रखिए। अब बालक को डैस्क पर ले आइए और उसे डैस्क पर चीज़ें रखने को कहिए। अब दोनों फिर वापिस जा कर पैन्सिलें ले आइए। बालक को पहले खाली डिब्बा बांए हाथ में दीजिए। बालक की अनुमति अनुसार तीन भिन्न-भिन्न रंगों की पैन्सिलें चुनिए और इन्हें डिब्बे में डाल दीजिए और बालक को दांए हाथ से उनके ऊपर हाथ रख कर डैस्क की ओर जाने को कहिए। अब बालक को कहिए कि वह फ्रेम को कागज़ पर रक्खे। आप फ्रेम को बांए हाथ से पक्की तरह पकड़िए और बालक की चुनी हुई पैन्सिल के साथ इस फ्रेम के इर्द-गिर्द पैन्सिल फेरकर उसका ख़ाका बना लीजिए फिर बालक को फ्रेम उठाने के लिए कहिए। बालक ख़ाके को देखता है। अब उसे इसके ऊपर आकृति रखने को कहिए। बालक की चुनी हुई दूसरी पैन्सिल से इसका आकार खेंचिए। अब बालक को आकृति उठाने के लिए कहिए। इन दोनों ख़ाकों में एक मि० मी० का फासला है। बालक को तीसरी पैन्सिल के साथ इन दो ख़ाकों के अन्तर में लम्बरुप से ऊपर से नीचे को रंग भरने को कहिए। यदि यह प्रदर्शन बालक को स्पष्ट रुप से समझ न आवे तो इसे दोहराया जावे।

यही साधन केवल आकृति के ख़ाके द्वारा भी किया जा सकता है। और अन्य आकृतियों को ले कर भी किया जा सकता है।

यह साधन बालक को लिखने के लिए बहुत सहायक है।

पढ़ने का चार्ट

संयुक्ताक्षरों के तीन चार्ट होते हैं। पहले चार्ट में अक्षर का आधा आकार दिया होता है, दूसरे में दोहरे अक्षरों के आकार होते हैं जैसे क्क, तीसरे चार्ट में ऐसे अक्षर दिए होते हैं जो अन्य-अन्य शब्दों में पृथक-पृथक स्थानों पर आते हैं जैसे 'र' भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न स्थान लेता है। इन

भिन्न-भिन्न चार्टों के अक्षरों से परिचय को पक्का करने के लिए चित्र के चार्टों की सहायता ली जाती है ।

पढ़ने के लिए ऐसे चित्र दिए जा सकते हैं जिन के नीचे नाम लिखे हों।

इसी प्रकार चित्र और अलग कटे हुए नामों के कार्डों द्वारा जोड़ी क्रिया की जा सकती है। ऐसे कार्ड भी होते हैं जिन पर चित्र में दिखाई हुई वस्तुओं के नाम दिए होते हैं।

एक और कार्डों का डिब्बा होता है जिनके ऊपर एक शब्द द्वारा आज्ञा दी हुई होती है और बालक कार्ड उठाता है या उसे कार्ड दिया जाता है जो वह पढ़ कर आज्ञा पूर्ण करता है। इसी प्रकार अधिक शब्दों की आज्ञाएं भी कार्डों पर लिखी हुई होती हैं जिन पर उपरोक्त साधन किया जा सकता है।

लिखने के साधन

लिखने के लिये इन्द्रिय साधन जैसे दण्ड गोलों के साथ साधन, सम्पर्क बोर्ड के साथ साधन, धरातल रेखा गणित आकृतियों के साथ साधन और अन्य साधन अप्रत्यक्ष रूप से हाथों की उंगलियों और अंगूठे के परस्पर मिल कर काम करने में सहायक हैं। और इन उंगलियों और अंगूठे के परस्पर सहयोग और संयम द्वारा ही लिखने की क्रिया सफ़ल हो सकती है ।

इन इन्द्रिय साधनों के अतिरिक्त अब जो अक्षर पहचानने के साधन किये गए हैं अर्थात रेगमार कागज़ के अक्षरों पर उंगलियां फेरने या ड्राईंग इनसैटस के साधनों, द्वारा प्रत्यक्ष रूप से लिखने की तैयारी होती है। बालक लिखने की क्रिया करने में स्वयं ही उत्साह अनुभव करता है। उसे लिखने के लिए कभी नहीं कहा जाना चाहिए। जब वह लिखे तो उस की लिखने की त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, और न ही उसकी लिखाई को ठीक करना चाहिए। यह त्रुटियां या अशुद्धियां उंगली फेरने, ध्वनि विश्लेषण और ध्वनि जोड़े के साधनों द्वारा ही दूर हो जाती हैं। बालक की पहली-पहली रचनाओं का खुशी-खुशी, उत्साह और सराहना के साथ स्वागत करना चाहिए।

लिखने की क्रिया रेगमार अक्षर, वर्ण या Drawing insets की सामग्री और साधनों को दोहराने से हो सकती है। परन्तु यह साधन क्रमशः कठिन और ऊंचे स्तर पर होने चाहिए।

सारांश

१—भाषा का प्रयोग मनुष्य का विशेष गुण है। इसके द्वारा ही

उसकी बुद्धि और भाव विकास के शिखर तक पहुँचे हैं। भाषा द्वारा बालक सामाजिक रचनाओं का अधिकारी बनता है। भूत काल से अपना सम्बन्ध जोड़ता है। और भविष्य का निर्माणकर्ता बनता है। भाषा के बिना बालक की बुद्धि और भाव अधूरे और अविकसित ही रह जाएंगे।

२—भाषा बोली भी जाती है और लिखी भी जाती है। लिखी हुई भाषा बोली हुई भाषा का मूर्त-रूप है। हमारी लिखी हुई भाषा अक्षरों के जोड़ से बनती है क्योंकि यह अक्षर ध्वनियों के प्रतीक हैं। हमने बालक को अनुभव कराना है कि किस प्रकार ध्वनियां प्रतीक के द्वारा मूर्तरूप धारण करती हैं।

३—अक्षरों को पहचानने के लिए निम्नलिखित सामग्री और साधन हैं।

(१) रेगमार काग़ज़ के अक्षर—सब अक्षर रेगमार काग़ज़ पर बने होते हैं। बालक को यह अक्षर इस अनुक्रम और समूह में दिए जाते हैं।

पहला समूह:—अ आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ,
ओ, औ, क, त, ग, प, न, ब,
ङ, य, म, द, र, ल, व, स, ह।

दूसरा समूह:—ट, ड, ण।

तीसरा समूह:—ञ, श, क्ष, च, ज्ञ, ज, ष।

चौथा समूह:—ख, थ, छ, फ, ठ, भ, झ, घ, ढ, ध।

बालक उंगलियों के अग्र भाग को धोकर रेगमार कागज़ के अक्षरों पर हल्के हल्के फेरता है और जब हाथ फेरना समाप्त होने को होता है तो उसका उच्चारण करता है। इस प्रकार ध्वनि और अक्षर को सम्बन्धित करता है।

(२) लकड़ी के बने हुए अक्षर—पाँच डिब्बों में लकड़ी के बने हुए अक्षर होते हैं। इस सामग्री द्वारा बालक को ध्वनियों का विश्लेषण सिखाया जाता है। अध्यापक सरल शब्द उच्चारण करता है और बालक इस शब्द की ध्वनियों का एक-एक करके विश्लेषण द्वारा अक्षर जोड़ता है।

(३) मात्राओं का डिब्बा—इस डिब्बे में दस-दस खानों की ६ लाइनें होती हैं। पहली लाइन में दस स्वर, दूसरी में इनकी मात्राएं और बाकी चार लाइनों में व्यञ्जनों के चार समूह होते हैं। कुछ खाने खाली छोड़े जाते हैं।

एक में हलन्त और दूसरे में अनुस्वार रखे जाते हैं। इनके साथ चार्ट भी होते हैं जो शब्द में मात्रा के ठीक स्थान को दिखाते हैं।

(४) ड्राइंग इनसैटस—सामग्री में धातु के अक्षर, १४×१४ फ्रेमों की होती हैं और प्रत्येक फ्रेम में अक्षर की आकृति कटी होती है इसके साथ एक पैड, एक रंगीन कागज़, रंगीन पैंसिलें भी होती हैं। पहले फ्रेम के अन्दर पैन्सल फेर कर अक्षर अंकित किया जाता है। फिर अक्षर के गिर्द पैन्सिल फेर कर अक्षर उतारा जाता है। अब जो दोनों लाइनों द्वारा खाली अक्षर बन गया है उसमें लम्बरूप से पैन्सिल द्वारा रंग भर दिया जाता है।

(५) चित्र और चार्ट—तीन चार्टों में संयुक्त अक्षर, दोहरे अक्षर और तीसरा ऐसे अक्षर जो दूसरे अक्षरों के साथ स्थान बदल-बदल कर लगते हैं।

(६) पढ़ने के लिए कार्ड होते हैं जिन पर एक शब्द में या एक से अधिक शब्दों में आज्ञा दी हुई होती है जो बालक पढ़ कर पूरी करते हैं। इसी प्रकार चित्र होते हैं और फिर चित्रों पर बालक कार्डों की जोड़ी करता है। ऐसे कार्ड भी होते हैं जिन पर चित्रों में वस्तुओं के नाम होते हैं। बालक इन्हीं चित्रों के नीचे जोड़ी करता है।

४—लिखने की तय्यारी अप्रत्यक्ष रूप से कई एक इन्द्रिय साधनों द्वारा होती है। और प्रत्यक्ष रूप से रेगमार अक्षरों, वर्णों के डिब्बों और ड्राइंग इनसैटस के साधनों से होती है। जब बालक इन साधनों में निपुणता दिखावे तो समझ लीजिए कि अब वह स्वाभाविक रूप में स्वयं ही लिखने के कार्य में उत्साह और रुचि दिखाता है। बालक को लिखना सिखाना भी नहीं और न ही उसकी लिखाई निन्दित करनी है। परन्तु उसकी पहली रचनाओं के प्रति उत्साह, रुचि और सराहना दिखानी है। लिखने के लिए बालक के स्कूल के कमरे में यह सामग्री होनी चाहिए—

भिन्न-भिन्न रंगों और नाप के कागज़, पैन्सिलें; दूसरे सफेद कागज़, बड़ा श्यामपट्ट, स्लेट। श्यामपट्ट पर बड़ी लाइनें खिंची हों, स्लेट पर उससे छोटी और कापी पर उससे छोटी हों। बालक ने खिंची हुई लाइनों के बीच में लिखना है।

२१

गणित शिक्षा

गणित शिक्षा का पहला साधन लम्बी संख्या वाली सीढ़ी जैसी पट्टियों से किया जाता है। इन पट्टियों और लम्बी सीढ़ी जैसी पट्टियों में यह अन्तर है कि लम्बी सीढ़ी की पट्टियां केवल लाल रंग की थीं परन्तु यह पट्टियां हर दस से० मी० के बाद लाल और नीले रंग से बदलती जाती हैं। केवल पहली पट्टी जो १० से० मी० की ही है लाल होती है, दूसरी १० से० मी० लाल, १० से० मी० नीली, तीसरी लाल, नीलो, लाल, ऐसे बाकी पट्टियां १०, १० से० मी० के अन्तर से रंग बदलती जाती हैं। बालक को साथ ले कर एक दो तीन संख्या वाली पट्टियां ले आइए। इन पट्टियों को एक दूसरे के बाद जमाइए। नाम सीखने के त्रिपद साधनों द्वारा एक, दो, तीन के शब्द सिखाए जाएं। पट्टियों के भागों को एक, दो तीन में गिनती बहुत स्पष्ट रूप से की जावे।

बाद में बालक को पट्टियों के भागों की गिनती के लिए कहा जाता है। जब बालक इन तीन पट्टियों को खूब जान ले तो और पट्टियां दी जाती है। ध्यान रहे कि पट्टियों की गिनती एक ही संख्या से आरम्भ की जावे। बालक जितनी बार पट्टियों के भागों को गिनना चाहे उसे गिनने दिया जावे।

इन पट्टियों के साथ साधन द्वारा संख्या नाम और परिमाण के ज्ञान को पक्का करने के लिए दस संख्या की पट्टी लीजिए। अब नौं संख्या और एक संख्या की पट्टी इसके नीचे जमाइए। फिर ८ सख्या की पट्टी ले कर दो संख्या की पट्टी उसके नीचे जमाइए। पांच संख्या की पट्टी दो बार लेने से १० की संख्या बनती है। इन साधनों द्वारा बालक एक तो संख्या के नाम सीखता है और दूसरे संख्या का अनुक्रम सीखता है।

रेगमार कागज़ की संख्या—

आप अपनी उंगलियों का अग्रभाग धोने का साधन कीजिए। रेगमार कागज़ की एक संख्या लेकर उसके उपर हल्के हल्के हाथ फेरिए। इसके पूर्ण होने पर संख्या के नाम का उच्चारण कीजिए। अब यह साधन बालक से

गणित-शिक्षा की सामग्री
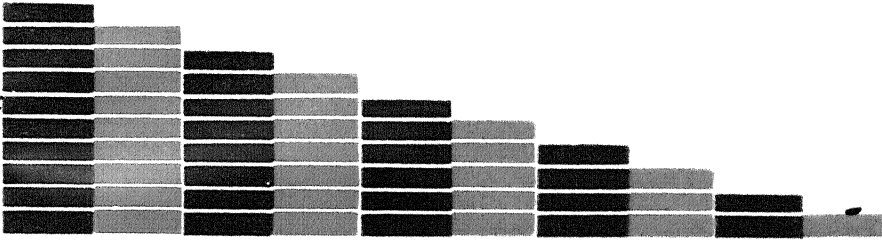
संख्या वाली लम्बी सीढ़ी

सिलाइयों के डिब्बे (पृ० १४५)
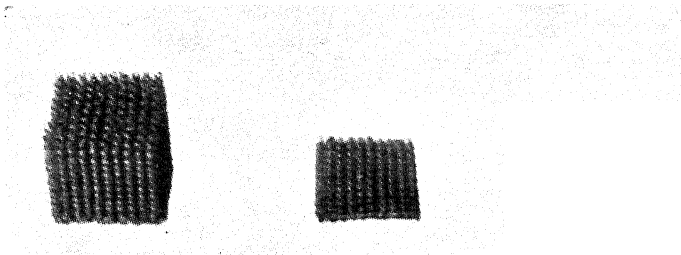
कौड़ियों की सामग्री (पृ० १४५)

करवाइए। जब बालक सब संख्याओं के साथ हाथ फेरने का साधन कर ले तो उसे पट्टियों और कार्डों (जिनपर एक से १० तक संख्या लिखी हुई हो) के साथ यह साधन कराया जावे। पहले पट्टियों और कार्डों को अनुक्रम में जोड़ा जावे, और फिर जोड़ी क्रिया का साधन किया जावे। इससे कठिन साधन यह है कि कार्डों को मिला दिया जावे और पट्टियों को उसी प्रकार अनुक्रम में रहने दिया जावे। अब एक एक कार्ड की संख्या को पहचान कर उसके नम्बर वाली पट्टी के साथ लगाया जावे। इस साधन का दूसरा रूप यह भी है कि कार्डों का अनुक्रम तो रहने दिया जावे परन्तु पट्टियों को मिला जुला दिया जावे। अब एक एक पट्टी लेकर उसको संख्या के कार्ड के नीचे रक्खा जावे। इन साधनों को और भी कठिन किया जा सकता है। जैसे कार्ड भी मिले जुले हों और पट्टियां भी मिली जुली हों और बालक एक कार्ड और एक पट्टी को उठाए और इसके साथ वाले कार्ड या पट्टी को ढूंढ़ कर इसके नीचे लगाए। इन साधनों द्वारा बालक, नाम, परिमाण और प्रतीक तीनों से परिचित हो जाता है।

सिलाइयों का डिब्बा—

दो डिब्बे होते हैं जिनमें पांच पांच खाने होते हैं। हर एक खाने के पीछे संख्या लिखी होती है। पहले खाने में ० लिखा होता है। और बाकी खानों में १ से लेकर ९ तक संख्या लिखी होती है। हर एक खाने में संख्या अनुसार सिलाइयां रखी रहती हैं। यह सिलाइयां बीच में से मोटी और किनारों से पतली होती हैं।

सिलाइयों के एक डिब्बे को लेकर दरी पर रख दीजिए। सिलाइयों को एक एक करके बाहर निकालिए परन्तु गिनिए नहीं। बालक से पूछिए कि डिब्बे पर क्या संख्या लिखी है। इन सिलाइयों को अनुक्रम रूप से डिब्बे के खाने में डालते जाइए और साथ ही गिनते जाइए। बालक को भी गिनने का अवसर दीजिए। अब दूसरे डिब्बे के साथ यह साधन किया जावे। इन साधनों का उद्देश्य बालक को परिमाण में पदरूप वस्तुओं को पहचानना सिखाना है

कौड़ियों का डिब्बा—

एक छोटा सा कौड़ियों का डिब्बा होता है जिसमें एक से १० तक की संख्या के कार्ड होते हैं। यह कार्ड मिले जुले होते हैं। बालक को इन कार्डों को अनुक्रम में लगाने को कहिए। जब वह कार्डों को अनुक्रम से रख दे तो उसे प्रत्येक कार्ड पर उसकी संख्या के अनुसार कौड़ियां रखने को कहिए।

इस सामग्री द्वारा बालक को सम और विषम के शब्द सिखाए जा सकते हैं। बालक को कौड़ियों को दो लाइनों में लम्बरूप में अनुक्रम से रखने को कहिए। यदि बालक स्वयं न कर सके तो उसे दिखाइए कि यह किस प्रकार करना है। फिर उसे त्रिपद साधन द्वारा सम और विषम के शब्द सिखाये जाते हैं।

दशमलव सीखने के साधन—

दशमलव सीखने के लिए एक ट्रे में यह सामग्री दी जाती है। एक कटोरे में ६ मोती हैं, नौ मोती की लड़ियां और प्रत्येक लड़ी में दस दस मोती हैं। नौ, सौ, सौ के समचतुर्भुज और एक हज़ार मोतियों का घन होता है यह ट्रे दरी पर ले आइए। बालक को एक मोती दिखाइए और पूछिए कि यह कितने मोती हैं? अब उसे दस मोती वाली लड़ी दीजिए और उससे पूछिए कि यह कितने मोती हैं। फिर उसे सौ मोतियों का समचतुर्भुज दीजिए और उसे बताइए कि यह सौ मोतियों का समचतुर्भुज है। इसकी व्याख्या इस प्रकार कीजिए—बालक को समचतुर्भुज की लड़ियां गिन कर इस प्रकार बताइए—एक दस, दो दस, तीन दस, और आख़ीर में दस दस और यह सौ हो गए। यदि बालक स्वयं गिनना चाहे तो उसे गिनने दिया जावे। अब उसे हज़ार का घन दीजिए और कहिए कि यह हज़ार है। और इसी प्रकार एक सौ, दो सौ, तीन सौ, इत्यादि कहते हुए दस सौ पर उसे बताइए कि यह हज़ार हो गए।

बालक को त्रिपद साधनों द्वारा एक, दस, सौ, हज़ार के शब्दों का पाठ पक्का कराया जावे।

इसके पश्चात् इस सामग्री को इस क्रम अनुसार रखा जावे। जिधर इकाई शुरू करनी है उधर ६ मोती लम्बरूप के अनुसार लगाइए, फिर दस फिर सौ, फिर हज़ार को रख दीजिए। इनको रखते समय आप प्रत्येक संख्या का उच्चारण करते जाइए।

अब बालक को कहिए कि ६ सौ, ७ दस, और तीन मोती ले आओ। बालक ६ सौ सौ के चकोन ७ दस की लड़ियां और तीन अलग मोती लाता है। आप अब उसके सामने इनकी गिनती कीजिए इसलिए नहीं कि उसने ठीक गिना है या नहीं बल्कि इसलिए कि इससे बालक की रुचि और भी बढ़ती है।

अब यह परिमाण वापिस ले जाता है। उसे फिर दूसरी कोई संख्या दीजिए और इसी प्रकार वह साधन दोहराते जाइए।

इन साधनों का उद्देश्य नाम और परिमाण में सम्बन्ध बताना है।

संख्याओं के प्रतीक सीखने के साधन—

इस शिक्षा के लिए कार्डों के तीन सेट होते हैं। पहले सेट में ९ हरे रंग के कार्ड होते हैं, और इन पर १ से ९ तक की संख्या होती है। दूसरे सेट में नीले रंग के ९ कार्ड होते हैं और इन पर १० से ९० तक की संख्या लिखी होती है। तीसरे सेट में लाल रंग के कार्ड होते हैं और इन पर १०० से ९०० तक की संख्या लिखी होती है। चौथे सेट में एक हरे रंग का कार्ड होता है और इस पर हज़ार (१०००) की संख्या लिखी रहती है। इन कार्डों की चौड़ाई एक समान होती है परन्तु लम्बाई में अन्तर होता जाता है।

पहला साधन—इस सामग्री को ले आने पर इसे बाहर निकाल लीजिए। इस में से १, १०, १०० और १०००, के कार्ड निकाल लीजिए। १०० और १००० के अंको के नाम का पाठ त्रिपद विधि द्वारा सिखाया जाय।

दूसरा साधन—इन कार्डों को क्रमानुसार लगाया जावे। यह क्रम ऊपर दाएं से बांएं एक से लगाई जाए और अब इन लाइनों की गिनती की जावे।

तीसरा साधन—बालक को विशेष संख्या का कार्ड लाने को कहा जावे। उदाहरणार्थ उसे तीन दस लाने को कहा जावे। यदि वह १०,२० और ३० के कार्ड ले आवे तो उसे समझाया जाए कि एक ३० वाला कार्ड ही तीनदस का है।

यह साधन साढ़े तीन और चार साल के बालकों के लिए उपयोगी है।

दशमलव के साथ प्रतीक और परिमाण का साधन

इस साधन के लिए मोतियों और कार्डों की सामग्री प्रयोग में लाई जाती है। बालक को कुछ मोती दे दीजिए और इन मोतियों के परिमाण वाला कार्ड लाने को कहिए। जब बालक ले आवे तो आप मोतियों को गिन लीजिए। बालक जब तक रुचि अनुभव करे उससे यह साधन करवाया जाए।

अब उसे कार्ड दिया जावे और इस संख्या के मोती लाने को कहा जावे।

इसी प्रकार बालक को एक संख्या दी जावे और इसका कार्ड और मोती लाने को कहा जावे। इन साधनों का उद्देश्य बालक को यह अनुभव करना है

कि प्रत्येक परिमाण अपने प्रतीक द्वारा बताया जा सकता है ।

दस की गिनती द्वारा अधिक संख्याओं के अनुक्रम का बोध

इस साधन के लिए ६ घन, ४५ समचतुर्भुज, ४५ लड़ियां, ४५ मोती, एक कटोरा, बड़े कार्ड (जो ६००० तक की संख्या के होते हैं), और एक ट्रे होती है । बालक को मोतियों के ६ घन, ८ सम चतुर्भुज, १६ लड़ियां और १३ इकाइयां दे दीजिए । उसे इनको गिनने के लिए कहिए । जब वह दस इकाइयां गिन ले तो आप उसे सहायता दें । आप उसे बताएँ कि यदि वह आप को १० इकाईयां दे दें तो आप उसे एक लड़ी देदें गे । इस प्रकार आप सब परिमाणों को जो दस से गुणा हों बदल सकते हैं । अब बालक को आप यही साधन कार्डों के साथ करने को कहिए ।

इस सामग्री के साथ जोड़ और बाकी, गुणा और भाग के साधन कराए जा सकते हैं । यह गिनती के साधनों और गणित के साधनों के लिए पुल के समान है ।

जोड़ का साधन—

पिछले साधन की सामग्री में तीन छोटे कार्डों के सेट, चार ट्रे, और चार कटोरे, जोड़ दिए जाएं तो इन साधनों के लिए यथेष्ट है । कार्डों के प्रत्येक सेट की तीन हजार तक की गिनती होती है ।

बड़े कार्डों को चटाई पर फैला लीजिए । तीन बालकों को एक एक कार्डों का सेट, एक एक कटोरा और एक २ ट्रे दे दीजिए । बालक, कार्ड अपनी चटाई पर फैला ले । अब प्रत्येक बालक को अलग अलग संख्या दीजिए और इस संख्या के कार्डों को लाने के लिए कहिए । फिर इसी परिमाण के मोती लाने को कहिए । और प्रत्येक बालक के मोती और कार्ड देख लीजिए कि कार्डों और मोतियों की संख्या ठीक है या नहीं । प्रत्येक बालक के मोती और कार्ड अपनी चटाई पर इस तरह रखिए ।

```
 २४५६
 ३२११
 १३२२
------
 ६९८९
```

इन साधनों का उद्देश्य यह है कि बालक यह जान सके कि किस प्रकार

अनेक परिमाण एक परिमाण बन सकते हैं। इस प्रकार बालक जोड़ की क्रिया सीखता है।

बाकी का साधन

इस साधन के लिए वही सामग्री जो जोड़ के लिए थी। यह साधन दो बालकों को ले कर किया जाता है। प्रत्येक बालक अपने सामने सामग्री को चटाई पर फैला लेता है। एक बालक को एक संख्या का बड़ा कार्ड और मोती निकालने को कहा जाता है। दूसरे बालक को एक और संख्या दी जाती है और उस संख्या का छोटा कार्ड निकालने को कहा जाता है। जब यह दूसरा बालक छोटा कार्ड निकाल आए तो उसे पहले बालक के मोती लेने को कहिए। अब पहले बालक को देने के पश्चात् बाकी मोती गिनने को कहिए और बाकी मोतियों की गिनती का छोटा कार्ड निकालने को कहिए। इस प्रकार एक बड़े परिमाण से दो छोटे परिमाण निकल आए। इसे इस प्रकार दिखा सकते हैं।

६३४६ < ४१२४ / २२२२

गुणा का साधन

सामग्री वही है जो जोड़ के लिए थी। प्रत्येक बालक को चुपके से एक संख्या दी जाय और उसे इस संख्या के मोती और छोटे कार्ड लाने को कहा जाये। सब के कार्ड और मोती ले लीजिए और गिनिए फिर कार्डों को इस क्रम में रखिए फिर इनके जोड़ के बराबर का बड़ा कार्ड इसके नीचे रखिए। अब बालक को बताइए जब वही संख्याएं एक से अधिक बार जोड़नी हो तो उसे गुणा कहते हैं। इसे इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

```
१ २ ३ ३
१ २ ३ ३
१ २ ३ ३
-------
३ ६ ९ ९
```

भाग का साधन

इसकी भी सामग्री जोड़ वाली है। एक बड़े परिमाण में मोती और उसकी संख्या का बड़ा कार्ड लीजिए। तीन बालकों को अपनी ट्रे और कटोरे ले आने को कहिए। और उन्हें बताइए कि प्रत्येक बालक को एक बराबर मोत अब बालकों को अपने गिर्द घूमने को कहिए और आप प्रत्येक

बालक को बराबर के परिमाण में मोती ऐसे बांट दीजिए कि आप के पास कुछ न रहे । अब बालकों को मोती गिन कर उसके अनुसार कार्ड लाने को कहिए। जब तीनों बालक कार्ड लेकर आजावें तो प्रत्येक से पूछिए कि उसका नम्बर क्या है ? सब के बताने पर उनको अनुभव होता है कि सब के पास वही कार्ड है। अब उन्हें बताइए की बड़ी संख्या तीन भागों में बंट गई है।

दस से आगे गिनती सीखने का साधन

एक डिब्बे में दो सेग्यूईन फ्रेम होते हैं। एक पर पांच बार दस दस और दूसरे पर चार वार दस दस लम्बरूप में लिखे होते हैं। इसके साथ संख्या के १ से ९ तक के ऐसे कार्ड होते हैं। जो फ्रेम के खानों में बहुत ठीक तरह से आ सकते हैं। बालक को दस की संख्या दिखाइए और पूछिए यह क्या है ? जब बालक दस कहे तो दाएं हाथ वाले खाने में एक डाल दीजिए और कहिए कि दस में एक मिला दें तो ११ बन जाते हैं। इस प्रकार यह साधन, १२, १३; से ले कर १९ तक की संख्या के कार्डों के साथ किए जावें। बालक को १९ तक इन साधनों द्वारा गिनती आ जाती है। वह नाम और परिमाण को सम्बन्धित करना सीखता है। नाम सीखने के लिए त्रिपद साधन करवाइए।

१९ संख्या से आगे की गिनती—

सामग्री में ४५ दस दस के मोतियों की लड़ियां हैं और ४५ मोती हैं।

१९ से आगे ९९ तक की संख्या सिखाने की विधि वही है जो १९ तक की संख्या सिखाने में लाई गई थी। जब बालक ९९ तक संख्या सीख जाता है तो अध्यापक उसे बताता है कि किस प्रकार एक की संख्या जोड़ने से ९९ की संख्या १०० में परिवर्तित हो जाती है। इन अंकों के नाम सीखने और इन नामों को परिमाण के साथ सम्बन्धित करने के त्रिपद साधन हैं।

सारांश

१—गणित के साधनों के पाँच उद्देश्य हैं।

(क) संख्या का नाम उच्चारण सीखना।

(ख) संख्या का अनुक्रम सीखना।

(ग) संख्या उच्चारण और संख्या प्रतीक का सम्बन्ध सीखना।
(घ) संख्या उच्चारण और उसके परिमाण का सम्बन्ध सीखना।
(च) संख्या प्रतीक और उसके परिमाण का सम्बन्ध सीखना।

ये सब उद्देश्य पहले पहल दस तक की संख्या सीखने में सिमित किये जाते हैं। इस दस के सहारे उन्हे दशमलव पद्धति सिखाई जाती है और फिर ११ से आगे ९९ तक के बीच की संख्या सिखाई जाती है। यह साधन साढ़े तीन और चार वर्ष के बालकों के लिए हैं।

२—दस तक गिनती सीखने की सामग्री और साधन—

(१) लम्बी संख्या वाली सीढ़ी—बालक को सिखाया जाता है कि पट्टी के भागों को कैसे गिनते हैं। पहले तीन पट्टियां १,२,३ संख्या वाली ली जाती हैं और फिर १० तक की पट्टियाँ ली जाती हैं। दूसरी प्रकार का साधन यह है कि दस संख्या वाली पट्टी ली जावे। और उसके नीचे नौ, एक, आठ, दो की पट्टियां इत्यादि रक्खी जावें। इन साधनों द्वारा क, ख का उद्देश्य पूरा होता है।

(२) रेगमार कागज़ की संख्या—उंगलियाँ धो कर रेगमार अक्षरों पर फेरी जावें। दूसरा साधन लम्बी संख्या वाली सीढ़ी और गणित कार्डों के साथ किया जाता है। सीढ़ी और कार्डो दोनों को अनुक्रम में लगाया जाता है फिर कार्डों और संख्या वाली सीढ़ी के साथ जोड़ी साधन किया जाता है। लम्बी संख्या वाली सीढ़ी को वैसे ही रखा जाता है, कार्ड मिला दिये जाते हैं और फिर जोड़ी साधन किया जाता है। अब कार्डों को अनुक्रम में रखिये, पट्टियों को मिला दीजिये और जोड़ी का साधन कीजिये। अब पट्टियों को और कार्डों को अलग अलग मिला दीजिये और जोड़ी का साधन कीजिए। इन साधनों द्वारा च का उद्देश्य पूर्ण होता है।

(३) सिलाइयों के डिब्बे—इस सामग्री द्वारा बालक को परिमाण में तद् रूप वस्तुओं को पहचानने के लिये जाग्रत किया जाता है।

(४) कौड़ियों का डिब्बा—यह मिले जुले कार्डों को अनुक्रम में जोड़ कर उनके ऊपर उनकी संख्या अनुसार रखने का साधन है। इससे घ का उद्देश्य पूर्ण होता है।

३—दस के आधार पर दशमलव पद्धति का ज्ञान होता है,

(१) ६ खुले मोती, ६, १०, १० मोतियों की लड़ियां, ६ दस दस मोती के लड़ियों वाले सम चतुर्भुज, एक हज़ार वाला घन, की सामग्री द्वारा बालक 'घ' का उद्देश्य पूरा करता है। बालक को पहले एक मोती; फिर मोतियों की लड़ी गिनने को दी जाती है। और फिर घन देकर कहते हैं कि यह सौ है अर्थात् एक दस, दो दस, दस दस सौ होता है। इस साधन द्वारा क, और ख, का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

(२) ऐसे कार्डों से जिन पर १ से ६, १० से ६०, १०० से ६००, और १००० की संख्या लिखी हुई होती है, बालक को १०० और १००० की संख्या सिखाई जाती है। दूसरा साधन कार्डों को अनुक्रम से लगाना है। तीसरा साधन बालक को संख्या के कार्ड लाने को कहना है इन साधनों द्वारा क, ख, ग, का उद्देश्य पूरा होता है।

(३) मोती और बड़े कार्ड—बालक को मोती दिए जाते हैं और उनकी संख्या का कार्ड लाने को कहा जाता है या कार्ड दिया जाता है। और उस पर लिखी संख्या के मोती लाने को कहा जाता है। इससे 'च' का उद्देश्य पूरा होता है।

(४) नौ घन, ४५ समचतुर्भुज, ४५ लड़ियां, ४५ मोती, एक कटोरा और बड़े कार्ड (जो ६००० तक की संख्या के होते हैं) और एक ट्रे होती है। इस सामग्री द्वारा बालक दस के आधारित ज्ञान के प्रयोग से बड़े परिमाणों का अनुक्रम सीखता है। बालक को दस मोती गिनने पर उसके बदले दस की लड़ी दी जाती है और इस प्रकार दस के छोटे परिमाण बड़े परिमाणों में परिवर्तित हो जाते हैं।

(५) उपरोक्त चौथे नम्बर की सामग्री में छोटे कार्डों के तीन सेट जिनमें प्रत्येक पर तीन हज़ार की गिनती हो—चार ट्रे, और चार कटोरे मिला लिए जावें। यह सामग्री चारों विधियां, जोड़, बाकी, गुणा और भाग सीखने के लिए पर्याप्त है। इन विधियों का अर्थ यह है कि परिमाण से परिमाण मिलाया निकाला, बढ़ाया अथवां बाँटा जा सकता है।

६. ११ से ६६ तक की संख्या सीखने के लिए सेग्यूईन बोर्ड, कार्ड, ६ लड़ियां और ४५ मोती पर्याप्त है। बालक को संख्या का नाम सीखने और संख्या के अनुक्रम का साधन कराया जाता है। उसे एक कार्ड दे कर उसकी संख्या फ्रेम में बनाने को कहा जाता है इत्यादि।